

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182793

UNIVERSAL
LIBRARY

सियाराम और भूख

लेखक
सियाराम शरणा प्रसाद, एम० ए०;
साहित्य-रत्न

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H801/P91V Accession No. G.H. 1277

Author प्रसाद, सियाराज शरण ।

Title विचार और अध्ययन । 1956

This book should be returned on or before the date
last marked below.

विचार और अध्ययन

लेखक

सियाराम शरदा प्रसाद, एम. ए., साहित्य-रत्न

भूमिका-लेखक

डा० राम कुमार वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०

निर्माण प्रकाशन

मुजफ्फरपुर (बिहार)

प्रकाशन-समिति

कृष्ण कुमार सिन्हा,

पुष्पा कश्यप,

मोहन लाल विद्यालंकार

प्रथम संस्करण—१०००

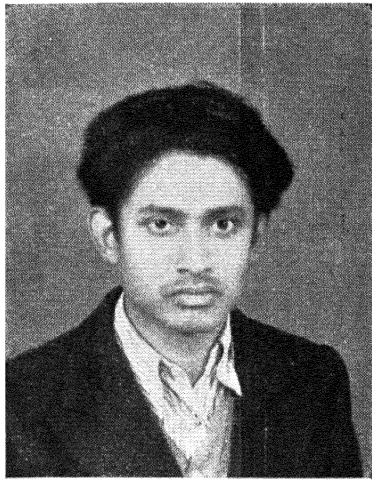
१९५६

मूल्य—२॥)

मुद्रक

कपिलेश्वर मिश्र

श्री गोपाल प्रेस, मुजफ्फरपुर ।



लेखक

उपन्यास-सम्राट, (1)

आदरशील श्रीयुव वृंदावन लाल वर्मा को सादर—

लेखक ।

विषय-सूची

विषय	पृ३
१ भूमिका	५
२ हिन्दी-साहित्य के इतिहास में नामकरण की समस्या	१
३ विद्यापति की पदावली का मुख्य रस	८
४ भक्त तुलसी की काव्य-साधना	११
५ महाकवि तुलसी और कमल	२१
६ तीन महाकवियों का शिशु-साहित्य	२५
७ मीरा की भक्ति-भावना और उसकी प्रेरक-शक्तियाँ	३६
८ पंत के काव्य में मङ्गलवाद	४७
९ महादेवी वर्मा का गद्य-साहित्य	५२
१० रामकुमार वर्मा का काव्य-वैभव	५८
११ 'कामायनी' की शाश्वत् समस्या	७२
१२ 'कामायनी' में सामयिक स्वर	७६
१३ 'कामायनी' में कला-तत्त्व	८०
१४ जानकी वल्लभ शास्त्री का काव्य-सर्वेक्षण	८६
१५ अहिंसावादी: एक समीक्षा	९७
१६ हिन्दी-कथाकार श्री राजाराधिका रमण	१०३
१७ गीति-काव्य में 'लाल चूनर'	१०५
१८ सूर-साहित्य में दूध, दही और मक्खन	११२

भूमिका

मेरी दृष्टि में आधुनिक हिन्दी-साहित्य के विकास के लिए स्वस्थ समालोचना की बड़ी आवश्यकता है। आज हिन्दी भाषा और साहित्य की मान्यता इस देश में सर्वोपरि है। सांस्कृतिक दृष्टि से प्राचीन साहित्य का मूल्यांकन तथा पश्चिमी साहित्य के संपर्क से साहित्य के अनेकानेक जीवनगत प्रयोग हिन्दी में नई दृष्टि की अपेक्षा रखते हैं। जीवन का बस्तुवाद एवं तज्जनित चिन्तन आज साहित्य में नये मापदण्डों का स्थिरीकरण चाहता है। आज की आलोचना प्राचीन मान्यताओं को चुनौती सी देती जान पड़ती है। आवश्यकता है इस बात की, कि हम अपने साहित्य में ऐसे आलोचकों का स्वागत करें जो प्राचीन मान्यताओं में अन्तर्दृष्टि रखते हुए नवीन प्रयोगों के औचित्य पर अपना निर्णय दे सकें। उनका ज्ञान विशद हो, अनुभव विशाल हो और निर्णय संतुलित हो।

श्री सियाराम शरण प्रसाद की आलोचना का इस दृष्टि से स्वागत होना चाहिए। उन्होंने प्राचीन और आधुनिक साहित्य की विविध समस्याओं और साहित्य-सृष्टियों पर गंभीर विवेचन किया है। उनका अध्ययन विस्तृत है और समालोचना की शैली संतुलित है। किसी भी विषय पर जो सामग्री उपलब्ध है, उसकी विवेचना कर सियाराम शरण प्रसाद जी ने अपना निर्णय दिया है। समालोचना तब तक महत्त्व नहीं रखती जबतक कि समालोचक विषय-विशेष की सर्वांग समीक्षा कर उस पर अपना निर्णय न दे। भले ही उस निर्णय से हम सहमत न हों, तथापि लेखक के चिन्तन-पक्ष के प्रति अपनी आस्था तो अवश्य ही प्रकट करेंगे और यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि लेखक का यह चिन्तन स्वस्थ और रचनात्मक है।

‘विचार और अध्ययन’ अपने नाम के अनुरूप ही प्रचुर सामग्री से पूर्ण है। इसके निबन्ध न केवल विषय की मीमांसा करते हैं, प्रत्युत वे हमारे चिन्तन को उत्साहित करते हैं और समीक्षा की उचित दिशा में ले जाने का संकेत करते हैं। इस दृष्टि से यह विवेचन विद्वानों और विद्यार्थियों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा। विषयों की नवीनता और उनके संबन्ध में जो विवेचन है, वह साहित्य के विद्यार्थियों को नई दिशा में सोचने की प्रेरणा प्रदान करेगा। ‘महाकवि तुलसी और कमल’, ‘तीन महाकवियों का शिशु-साहित्य’, ‘पंथ के काव्य में मंगलवाद’, ‘कामायनी में कला-तत्त्व’, ‘सूर-साहित्य में दूध, दही और मक्खन’ मुझे बहुत रुचिकर ज्ञात हुए।

श्री सियासत शरण-प्रसाद की इस रचना के प्रति मेरी अनेकानेक मंगल-कामनाएँ हैं।

साकेत, प्रयाग

३-७-५६

रामकुमार वर्मा

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में नामकरण की समस्या

साहित्य पर सामयिक परिस्थितियों के साथ ही सर्वकालीन विचारों की भी अन्तर्गण छाप रहती है। सत् साहित्य निस्सन्देह आवेष्टन के प्रभाव को ग्रहण करता और उसमें परिवर्तन करता चलता है। साहित्य में सृष्टि और स्रष्टा दोनों रूप निहित रहते हैं। साहित्य की गंगा में राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक सभी छोटी-बड़ी धाराएँ मिलकर एक रूप ग्रहण करती चलती हैं। साहित्य के इतिहास में उनका भी महत्व निश्चित रूप से हमें स्वीकार करना पड़ेगा। डा० रामकुमार वर्मा ने ठीक ही कहा है—‘यह स्पष्ट है कि सामयिक मनोविकार तो किसी धूमकेतु की भाँति प्रदाहित होकर समस्त अकाश को आतंकित कर देते हैं, किन्तु सर्वकालीन विचार ध्रुव-नक्षत्र की भाँति अटल रह कर सदैव उत्तरोन्मुखी बने रहते हैं। साहित्य के इतिहास का निर्माण करने में सामयिक और सर्वकालीन विचार अपने विभिन्न अनुपातों से सदैव सहायक रहते हैं।’+ युग के अनुरूप ही साहित्य भी अपना कलेवर बदलता रहता है। परिवर्तन का यह क्रम सदा चलता रहता है, परन्तु बहुत शनैः-शनैः। शुक्लजीने उचितही कहा है कि ‘साहित्य जनता का चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है।’ यह निश्चित है कि जनता का चित्तवृत्ति के परिवर्तन के अनुसार साहित्यक्षेत्र में भी परिवर्तन होता रहता है। ‘आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। हिन्दी साहित्य का इतिहास हिन्दी भाषी जनता का चित्तवृत्तियों का प्रतिनिधि है।’ I

सर्व प्रथम व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पूर्ण इतिहास रामचन्द्र शुक्ल लिखित ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ (१९८६) है। इस क्षेत्र में श्यामसुन्दर दास, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा डा० रामकुमार वर्मा, इन चार विद्वानों की पुस्तकें अधिक उपादेय हैं। परन्तु उनमें भी त्रुटियाँ हैं—इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। इन्हीं विद्वानों की पुस्तकों को मूलाधार मान कर हम काल विभाजन पर

+ डा० रामकुमार वर्मा—साहित्य के इतिहास की समस्या (निबंध)

I पं० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास

विचार और अध्ययन]

विचार करेंगे । इनमें नामकरण की दृष्टि से पं० रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास अधिक भ्रेष्ठ है, जिस पर हम आगे प्रकाश डालेंगे । उसे हम अन्य सभी इतिहासों से अधिक वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित और Standard देखते हैं । नन्ददुलारे जी ने ठीक ही कहा है कि उसमें वैज्ञानिक शैली अपनाई गयी है । + हम सर्वप्रथम उक्त चारों विद्वानों का काल विभाजन देखें :—
 पं० रामचन्द्र शुक्ल—वीरगाथा काल संवत् १०५०—१३७५ । डा० श्याम-सुन्दरदास—आदि युग (वीरगाथा का युग)—संवत् १०५०—१४०० । डा० रामकुमार वर्मा—सन्धिकाल—संवत् ७५०—१०००, चारण काल—संवत् १०००—१३७५ । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—आदिकाल—संवत् १०००—१३७५ ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने सिद्धों, जैनों आदि को अपभ्रंश काल में रखा है, और उनके काव्य को साम्प्रदायिक कह कर साहित्य में स्थान नहीं दिया है । शुक्लजी ने काल विभाजन इस प्रकार किया है—‘जिस काल खण्ड के भीतर किसी विशेष ढंग की रचना की प्रचुरता दिखायी पड़ी, वह एक अलग काल माना गया है । और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरूप के अनुसार किया गया है ।’ I शुक्लजी ने नामकरण प्रवृत्तियों के आधार पर किया है । उन्होंने ‘वीर-गाथा काल’ नामकरण इसलिए किया है क्योंकि उनके विचार से उस युग की अधिकांश रचनाएँ (साहित्यिक कोटि में आने वाली) वीर-विषयक हैं । उनमें राजाओं की स्तुतियाँ या उनका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है जिसे चारणादि किया करते थे । उस युग में राजनैतिक परिस्थिति भी उसी ढंग की थी । विदेशियों के आक्रमण होते रहते थे, स्वयं राजपुत्र, (राजा) आपस में छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा किया करते थे । ऐसे वातावरण में पला हुआ साहित्य यदि वीर-विषयक है, तो वह उचित ही है । यही कारण है कि इस युग में वीर-भाव की पूजा होती थी । शुक्लजी ने इस काल के अपभ्रंश और देश-भाषा काव्य की बारह पुस्तकें इतिहास में विवेचना योग्य समझी थी । उनके नाम हैं—(१) विजयपाल रासो, (२) कीर्तिलता, (३) हम्मीर रासो, (४) कीर्तिपताफा, (५) पृथ्वीराज रासो, (६) परमाल रासो (आल्हा का मूल रूप), (७) जयमयंक जस चन्द्रिका (८) खुसरो की पहेलियाँ, (९) विद्यापति-पदावली, (१०) जयचन्द्र प्रकाश, (११) बीसलदेव रासो, (१२) खुमान रासो । ‘इन्हीं बारह पुस्तकों की दृष्टि से आदिकाल का लक्षण, निरूपण

+ नन्द दुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य

I राम चन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास

[हिन्दी साहित्य के इतिहास में नामकरण की समस्या और नामकरण हो सकता है। इनमें से तीन, विद्यापति पदावली, खुसरो की पहेलियाँ तथा बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रन्थ वीर गाथा-त्मक हैं। अतः आदिकाल का नाम वीरगाथा काल ही रखा जा सकता है।^१ + परन्तु इस पर द्विवेदीजी का मत है कि 'इधर हाल की खोजों से पता चलता है कि जिन बारह पुस्तकों के आधार पर शुक्लजी ने इस काल की प्रवृत्तियों का विवेचन किया है उनमें से कई पीछे की रचनाएँ हैं और कई नोटिस मात्र हैं। और कई के सम्बन्ध में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उनका मूल रूप क्या था।' डा० श्यामसुन्दर दास ने काल-विभाग प्रत्येक की मुख्य विशेषताओं को ही ध्यान में रख कर किया है। उन्होंने भी हिन्दी के आदिकाल (१०५०—१४००, किसे ने १००० से १३७५, किमी ने १००० से १४०० तक) को वीरगाथा काल ही कहा है। डा० रामकुमार वर्मा ने ७५० से १००० तक, बौद्ध, जैन, सिद्धों आदि की कविताओं को सन्धिकाल में रखा है और १००० से १३७५ तक को हिन्दी का चारण काल कहा है। वर्मा जी कहते हैं—'अतः अपने विकास में साहित्य ऐसी स्थल पर आता है जहाँ दो भाषाओं या दो शैलियों में सन्धि होती है और साहित्य के इस काल को सन्धि-काल कहना ही अधिक समीचीन है।' × परन्तु मेरे मत से सन्धि-काल नामकरण पूर्ण-तया भ्रामक है। साहित्य के साथ शैली सर्वदा गतिशील रहती है। भक्ति-काल के बाद रीतियुग आया तो शैली में अवश्य परिवर्तन हुये। रीतियुग के पश्चात् द्विवेदी युग में शैली परिवर्तन के साथ ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली प्रतिष्ठित हुई; फिर उस युग को भी सन्धि-काल कहा जा सकता है। इसलिए यह नामकरण उचित नहीं है। चारण काल वीरगाथा काल के बदले कहना भी कोई नवीन बात नहीं है। १००० से १३७५ को वर्माजी ने चारणकाल कहा है क्योंकि चारणों द्वारा इस युग की अधिक रचनाएँ—वीर-विषय-रचित हैं। परन्तु चारणकाल से वीरगाथा काल नामकरण अधिक व्यापक तथा युग की प्रवृत्तियों का परिचायक है।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने १००० से १३७५ तक को आदिकाल ही कहा है। * उनका विचार है कि वास्तविक हिन्दी-साहित्य का आरम्भ भक्तिकाल से है। 'क्योंकि आदिकाल तक लोक-भाषा का जो साहित्य

+ पं० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास

× डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

* डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य, हिन्दी साहित्य का आदिकाल

विचार और अध्ययन]

प्राप्त है वह परिनिष्ठित (Standard) अपभ्रंश का ही साहित्य है। उसमें हिन्दी भाषा का रूप स्पष्ट नहीं है। परन्तु दशवीं से चौदहवीं शताब्दी तक लिखित साहित्य में परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढ़ी हुई भाषा है। वस्तुतः हिन्दी की आधुनिक बोलियों में से किसी-किसी के पूर्व रूप में ही उपलब्ध होता है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक दशवीं शताब्दी से इस इतिहास का आरम्भ स्वीकार करते हैं। इसी समय से हिन्दी-साहित्य का आदिकाल माना जा सकता है। 'हिन्दी के इस काल के साहित्य को दीर्घ काल से चली आती हुई परम्परा का बढ़ाव समझना ही सङ्गत जान पड़ता है। वस्तुतः हिन्दी का आदिकाल शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोताओं के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम मनोभावापन्न परम्परा विनिर्मुक्त, काव्य रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है; यह टीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परम्परा प्रेमी, रूढ़िग्रस्त तथा सजग और सचेत कवियों का काल है। साहित्य की दृष्टि से यह काल अपभ्रंश काल का बढ़ाव ही है। पर भाषा की दृष्टि से यह परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढ़ी हुई भाषा की सूचना लेकर आता है। इसमें भावी हिन्दी भाषा और उसके काव्य का रूप अंकुरित है।' फिर भी हम इस काल की कदापि उपेक्षा नहीं कर सकते और तब हम भाषा के अनुसार नहीं, प्रवृत्ति के अनुसार वीरगाथा काल कहें तो अनुपयुक्त भी नहीं होता है। द्विवेदी जी ने भी स्वीकार किया है कि "कुछ आलोचकों को यह नाम (आदिकाल) अच्छा लगता है, परन्तु इससे एक भ्रामक धारणा की सृष्टि होती है। उससे सावधान रहें तो यह नाम बुरा नहीं। वीर-रस की सचमुच इसमें प्रमुखता है।"

राहुल जी ने इस युग (वीर गाथा काल) को सिद्ध-सामन्तीय युग कहा है। + क्योंकि एक ओर सिद्धादि जनता की भाषा में उपदेश पूर्ण-आध्यात्मिक कविता कर रहे थे। जैनादि सरस काव्य लिख रहे थे तो दूसरी ओर सामन्तीय कविता लिख जाती थी, राजाओं, सामन्तों के परितोष तथा इनमें वीरता जाग्रत करने के लिए। द्विवेदी जी ने भी बहुत कुछ इस नाम से सहमत होते हुए इसकी त्रुटियों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि 'इस नाम से महत्त्वपूर्ण लौकिक रस की रचनाओं का कुछ भी अभाव नहीं मिलता जो परवर्ती काव्य में बहुत व्यापक रूप में प्रकट हुई है।' सचमुच, यह नाम-

+ महापंडित राहुल सांकृत्यायन — काव्य-धारा

[हिन्दी साहित्य के इतिहास में नामकरण की समस्या

करण भी पूर्ण दोष रहित कदापि नहीं है। और रीतियुग भी सामन्तीय युग ही था जब कविता कामिनी, कामवश, आतुर नृपों के संकेत पर थिरक-थिरक नाचा करती थी। उनका और कोई व्यापक और मुख्य उद्देश्य नहीं था।

मिश्र बन्धुओं ने ७००-१४२ विक्रम को पूर्व आरम्भिक काल कहा है। मिश्र बन्धुओं ने इस काल के अन्तर्गत कुछ जैन ग्रन्थों को रखा है। परन्तु शुक्ल जी ने इसे विवेचनीय नहीं समझा। वे (शुक्लजी) कहते हैं कि इन पुस्तकों में बहुत सी पुस्तकें (क) नोटिस मात्र हैं (ख) कुछ पीछे की रचनाएँ हैं (ग) और कुछ जैन धर्म के उपदेशक विषयक हैं। स्मरण रहे, द्विवेदी जी ने भी इन्हीं दोषों का आरोप शुक्ल जी के काल-निर्णायक पुस्तकों पर किया है। इतना तो सत्य है कि मिश्र बन्धुओं का काल-विभाजन वैज्ञानिक नहीं है और उनकी पुस्तक कविवृत्त-संग्रह हैं, अधिक नहीं। उनका काल काल निर्णय व्यवस्थित और वैज्ञानिक नहीं है।

सचमुच हिन्दी-साहित्य के इतिहास में यह काल बड़ा विवादग्रस्त है। और ऐसी परिस्थितियों में यह एक जटिल समस्या उठ खड़ी हुई है कि इस काल का नामकरण क्या हो? इस विवाद में एक निश्चित धारणा स्थापित करना कठिन हो जाता है। हमारे मतानुसार जब तक इस काल की पूर्ण-सामग्रियाँ, जिन्हें साहित्यिक संज्ञा से अभिहित किया जाना चाहिए, नहीं मिल जातीं, प्राप्त सामग्री पर ही काल-निर्धारण करना उचित होगा। इस दृष्टि से 'वीरगाथा' नामकरण बहुत सीमा तक इस समस्या की पूर्ति कर सकेगा। परन्तु, उस काल के सिद्धों तथा जैनों के काव्य की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अब एक प्रश्न उठता है कि उस काल में सिद्धों आदि द्वारा लिखित नीतिपरक, काव्य गुण से पूर्ण कविताएँ प्रचुर मात्रा में हमारे सम्मुख हैं। शुक्लजी ने उन्हें साम्प्रदायिक कह कर अलग कर दिया है, परन्तु यह सत्य नहीं है। जब तक वे साम्प्रदायिक नहीं हैं तब तक वे साम्प्रदायिक नहीं हैं।

सकते हैं। साथ ही प्रचारात्मक वस्तुओं को साहित्य की सीमा में भी नहीं रख सकते। फिर भी जो पुस्तकें प्राप्त हैं उन्हीं के आधार पर काल-विभाजन करते हुए हम उस काल को 'वीरगाथा काल' ही कहना अधिक उपयुक्त सम-

विचार और अध्ययन]

झूठे हैं, भविष्य में शोधों के अनुसार यह नामकरण बदल भी सकता है। हमें इसके लिए सदा सावधान रहने की आवश्यकता है। एक प्रश्न और उठता है कि खुसरो और विद्यापति की रचनाओं को फुटकल कह कर ध्यान न देना उचित है या नहीं? इतना तो अवश्य है कि खुसरो हिन्दी भाषा का प्रथम प्रयोक्ता था और विद्यापति की रचनाओं में प्रचुर कलात्मकता और काव्यात्मकता है, इसलिए उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमें उनकी परम्परा को भी खोजना चाहिए जो हमारे लिए—हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए पूर्ण उपादेय होगी। परन्तु जब इस सिद्धान्त—जिसमें विशेष ढंग की रचना अधिक दिखायी दे—के अनुसार नामकरण हो तो उनकी रचनाओं की उपेक्षा न करते हुए भी हमें वीरगाथा काल कहना ही युक्ति सङ्गत लगता है क्योंकि शुक्लजी की आधार पुस्तकों में बहुत सी पुस्तकें अब अपना निश्चित अस्तित्व रखने लगी हैं।

वीरगाथा काल के बाद अन्य काल (आधुनिक काल छोड़कर) का नामकरण विवादग्रस्त नहीं है। सभी प्रभृत विद्वान प्रायः एक ही नाम से सहमत हैं। परन्तु हमें यह भी सत्य एवं स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि किसी विशेष नामकरण का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि उस काल में दूसरे ढंग की रचना लिखी नहीं जाती थी। यदि ऐसी बात सोचें तो वह गलत है। प्रबल प्रवृत्तियों के आधार पर ही हम नामकरण करते हैं। और काल-विभाजन में संवत् देने का यह भी अर्थ नहीं कि उस साल के प्रथम दिन से ही अमुक प्रवृत्ति की धारा एक दम टूट गई और दूसरी प्रवृत्ति आरम्भ हो गई। परिवर्तन का क्रम बहुत शनैः-शनैः होता रहता है।

१६०० से आधुनिक काल का आरम्भ माना जाता है। डा० राम कुमार वर्मा ने १६०२ से आधुनिक-काल का आरम्भ माना है, परन्तु इसमें कोई विशेषता नहीं। आधुनिक-काल विभिन्न समस्याओं तथा परिस्थितियों से निर्मित काल है। विदेशी साहित्य के सम्पर्क के कारण आदान-प्रदान हिन्दी-साहित्य में अवश्य ही हुआ। डा० श्याम सुन्दर दास के मतानुसार “यद्यपि यह काल हिन्दी-साहित्य का सर्वतोमुखी विकास का युग है, किन्तु इसकी सबसे बड़ी विशेषता है गद्य-साहित्य का विकास।” १ इस युग में विविध परिवर्तन हुए, अनेक नवीनता आयीं, इसलिये प्रायः सभी विद्वान एक मत से १६०० में (या इसके आस-पास से) ‘आधुनिक काल’ का आरम्भ मानते हैं।

१ डा० श्याम सुन्दर दास—हिन्दी भाषा और साहित्य

[हिन्दी साहित्य के इतिहास में नामकरण की समस्या]

वाष्णोय का विचार है “इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यदि, स्थूल रूप से, भारतेन्दु की जन्म-तिथि अर्थात् १८५० से हिन्दी-साहित्य के नवीन या आधुनिक युगका सूत्रपात मान लिया जायतो कोई विशेष हानि न होगी।” × परन्तु उस समय को पृष्ठभूमि कहें तो अनुचित न होगा, जो बीज बोया गया वह पूर्णतया अंकुरित १९०० के आस-पास से हुआ। इसलिये इस समय से आधुनिक-काल मानना न्याय संगत लगता है। आधुनिक युग में इतनी नवीनता है कि प्रत्येक २० वर्ष के अन्दर ही एक दूसरी प्रणाली एवं दृष्टि-चेतना उद्बुद्ध होने लगी है। यही कारण है कि द्विवेदी युग के २० वर्ष के अन्दर ही छायावाद और स्वच्छन्दतावाद, फिर प्रगतिवाद, हालावाद नकेन-वाद, प्रयोगवाद साहित्य-क्षेत्र में समादृत हो गये हैं।

इतना तो निश्चय है कि अभी हम इस युग को भले ही आधुनिक काल कहें परन्तु जब कुछ पीढ़ियों के पश्चात् इन विचारों और प्रयोगों में मौलिकता (Originality) तथा नवीनता नहीं दीख पड़ेगी तो उपर्युक्त नाम कहने में कठिनाई उठ खड़ी होगी। अतः इतिहासकारों के सम्मुख परम कर्तव्य हो जाता है कि उक्त नाम के बदले ऐसा नामकरण करें कि जिससे आगामी युग में भी सार्थकता और विशिष्टता अश्रुण रह सके। बीर गाथा-काल के पश्चात् भक्ति-काल के लोगों के लिये भी वह काल आधुनिक काल रहा होगा। अतः यह नामकरण सर्वथा भ्रामक तथा दोष-ग्रस्त है। आधुनिक युग नवीन युग का द्योतक है, परन्तु प्रवृत्ति-मूलक युग वैशिष्ट्य का किंचित परिचायक नहीं। यदि इसे ‘वैज्ञानिक काल’ की संज्ञा से अभिहित करें तो अनुचित सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि कविता, उपन्यास, कहानी आदि सभी क्षेत्रों में अर्थ-विज्ञान, समाज विज्ञान (Sociology), मनोविज्ञान (Psychology), आदि अनेकानेक विज्ञानों का प्रभाव मूलतः व्यापक रूप में परिलक्षित होने लगा है। आज का सम्पूर्ण साहित्य (Literature) वैज्ञानिक दृष्टिकोण की उपेक्षा नहीं कर सकता। अतः हम इतिहासकारों से इस नाम पर विचार करने का आग्रह करेंगे क्योंकि विज्ञान बड़ी व्यापकता के साथ साहित्य-क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है।

१९५२ ई०

× डा० लक्ष्मी सागर वाष्णोय—आधुनिक हिन्दी साहित्य

विद्यापति की पदावली का मुख्य रस

विद्यापति की सरस पदावली में एक साथ ही कोकिल और पर्पाहे की प्रेम-पीर, मदमत्त-रूपहले, सुन्दर ताम्र भौरों का मधुर गुंजार, पंचदेव के पुष्प निर्मित सुनहले वाण की आकर्षण शक्ति, परिमल-पूरित सोमलता की सुगन्ध, मंद मलयानिल की मादकता, कलकल करती उर्मियों के बाँच मानस को भ्रमा देने वाला सरिता की चंचलता परिव्याप्त है। परन्तु, मैथिल कोकिल विद्यापति की सरस रचना को लेकर हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक अत्यन्त गंभीर समस्या उत्पन्न हो गयी है। शुक्ल जी ने उन्हें 'खुसरो' की तरह ही एक निर्दिष्ट परम्परा की सीमा में न स्थापित कर, प्रत्युत् फुटकल कवियों में समाहित कर दिया है। परन्तु ऐसे प्रतिनिधि तथा विद्वान कवि को उस फुटकल कवियों में सम्मिलित कर देना पूर्णतः अनुचित सा लगता है। इसी-लिए डा० रामकुमार वर्मा ने उन्हें भक्ति काल के कृष्ण भक्ति शाखा में रख-कर किंचित इस दोष के परिहार का प्रयत्न किया है। फिर भी निश्चित धारणा के कारण उन्हें कृष्ण भक्ति शाखा का कवि स्वीकार कर भी भक्ति-काल में उचित ढंग से समाहार न कर सके। स्मरण रहे, प्रस्तुत लेख में हमारा आलोच्य विषय उनकी रचना का रस है।

अभिनव जयदेव, कविकुल कंठाभरण, विद्यापति के सरस काव्य को शृङ्गारिक सीमा के अन्तर्गत स्वीकार किया जाय या भक्ति परक साहित्य के ? प्रस्तुत प्रश्न पर विभिन्न उद्भट विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत का प्रतिपादन किया है। हम उनके विचारों पर दृष्टिपात करते हुए एक निश्चित निष्कर्ष निकालने का प्रयास करेंगे। डा० ग्रियर्सन ने विद्यापति की पदावली को आध्यात्मिक कहना श्रेयस्कर समझा।

'The people of a colder western clime, have contented themselves with comparing the ineffable love of God to that of a father to his children, which the warmer climes of the tropics have led to the seekers after truth to compare the love of the worshipper for the worshipped to that of supreme mistress Radha for her supreme lord Krishna.... The glowing stanzas of Vidyapati are read by the devout Hindu with as little of the base part of human sensuousness, as the song of Solomon is by the Christian priest. X

X ग्रियर्सन—Introduction to a christomathy of Maithily of language.

[विद्यापति की पदावली का मुख्य रस]

ग्रियर्सन से आनन्द कुमार स्वामी भी विचार-सहमत हैं। हरिऔध ऐसे विद्वान ने भी उनकी राधा-कृष्ण-परक रचनाओं को भक्ति-भावना से ओत-प्रोत मानते हुए अपना दृष्टिकोण इस प्रकार व्यक्त किया है—‘सरस पदावली का आश्रय लेकर उन्होंने भगवती राधिका के पवित्र उद्गारों से अपनी लेखनी को रसमयी ही नहीं बनाया, साहित्य-क्षेत्र में अपूर्व भावों की अवतारणा की।’ उन्होंने आगे और भी स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि ‘गीत-गोविन्द’ में शृङ्गार-स्रोत होते हुए भी भगवती राधिका तथा भगवान् कृष्ण के प्रति उच्च भाव हैं, उसी प्रकार विद्यापति की सरस रचनाओं में कहा जा सकता है। डा० श्यामसुन्दर दास ने भी उपर्युक्त कथनों से सहमत होते हुए लिखा है “काल की पूर्वापरता का ध्यान रखते हुए हम कह सकते हैं कि विद्यापति ही हिन्दी में भक्ति-काव्य के प्रथम कवि हैं। उनकी रचनाएँ राधा और कृष्ण के पवित्र प्रेम से ओत-प्रोत हैं जिनसे कवि की भावमग्नता का परिचय मिलता है।”+

परन्तु अनेक सुधी आलोचक एवं विचारक उपर्युक्त कथन से असहमत हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने विद्यापति की रचनाओं को श्रृङ्गारिक ही मानते हुए अपना मत व्यक्त इस प्रकार प्रकट किया “—आध्यात्मिक चक्षुषः आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने गीत-गोविन्द के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है वैसे ही विद्यापति के पदों को भी।” × बङ्गला-साहित्य के विद्वान डा० विनय कुमार ने आनन्द कुमार स्वामी से विरोध प्रकट करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है—

“Coomar Swami would have been very happy if he could interpret the whole Radhakrishna literature as an expression of spiritual Godwardly love. But the earthly element, the physical beauty, the dirt, the dust, the imperfection, perfection the heart and nature and women, the human love the pleasure of senses are too many to be ignored. Really it is impossible to recognise any other pleasure in the world of Vidyapathi.”

डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में हम कह सकते हैं—“विद्यापति ने राधा-कृष्ण का जो चित्र खींचा है उसमें वासना का रङ्ग बहुत ही प्रखर है।

+ डा० श्याम सुन्दर दास—हिन्दी भाषा और साहित्य।

× पं० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास।

विचार और अध्ययन]

आराध्य देव के प्रति भक्त का जो पवित्र विचार होना चाहिये वह लेश मात्र भी नहीं है... राधा का प्रेम भौतिक और वासनामय प्रेम है। आनन्द ही उसका उद्देश्य है और सौन्दर्य ही उसका कार्य-कलाप। यौवन ही से जीवन का विकास है।” × वर्मा जी ने स्पष्ट शब्दों में विद्यापति के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि कवि Byron के समान ही विद्यापति का सिद्धान्त है कि ‘यौवन के दिन ही गौरव के दिन हैं।’ आगे उन्होंने कहा है “विद्यापति के इस बाह्य संसार में भगवत्-भजन कहाँ, इस वयः सन्धि में ईश्वर से सन्धि कहाँ, सद्यः स्नाता में ईश्वर से नाता कहाँ और अभिसार में भक्ति का सार कहाँ। उनकी कविता विलास की सामग्री है, उपासना की साधना नहीं। उससे हृदय मतवाला हो सकता है, शान्त नहीं।” स्मरण रहे डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी पदावली में वर्णित राधा-कृष्ण के प्रेम में शरीर-पक्ष की प्रधानता स्वीकार की है।

इस विवादग्रस्त वातावरण में उनका रचनाओं को किस रस के अन्तर्गत रखें यह अत्यन्त कठिन समस्या है। हम यह भी निश्चित रूप से जानते हैं कि भक्ति और शृङ्गार का स्थायी भाव एक ही होता है। उसके आलंबन और उद्दीपन, विभाव, अनुभाव भी समान होते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने, इस ओर संकेत किया है—

“काव्य सरस सिगार के दोउ दल, कविता नेम।

जग जन सौ कै ईस सौ कहियत जहिपर प्रेम॥

हरि उपासना, भक्ति, वैराग, रसिकता, ज्ञान।

सो धैं जग-जन मानि या चन्द्रावलिहि प्रमान॥+

यदि प्रेम का पात्र लौकिक पुरुष होता है तो उस लौकिक प्रेम से शृङ्गार रस की उत्पत्ति होती है और यदि प्रेम का पात्र दिव्य पुरुष हो तो पारलौकिक प्रेम से भक्ति रस की अवतारणा होती है। विद्यापति के कृष्ण और राधा लौकिक पात्रों की तरह हाव-भाव, विकलता-कामुकता और विलासता आदि प्रकट करते हैं। अतः कृष्ण अलौकिक होते हुए भी पदावली में अलौकिक न रहकर पूर्णलौकिक बन गये हैं। उनमें भक्तों के व्यक्तित्व का मौलिक अभाव है। उनमें भक्तों की सी तन्मयता और समर्पण नहीं। तुलसी आदि भक्त कवियों ने भी अपने आराध्य देव की आराधना की है,

× डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—चन्द्रावली नाटिका

[विद्यापति की पदावली का मुख्य रस]

उनके कायिक-सौन्दर्य, विरह तथा उनकी श्रृङ्गार-चेष्टाओं का सफल वर्णन किया है, परन्तु संयमपूर्ण, मर्यादायुक्त, जिसमें भक्ति-भावना का प्रखरवैग है। नायक-नायिका साधारण पुरुष-स्त्री की तरह केलि-क्रीड़ा नहीं करते। स्मरण रहे, विद्यापति का संयोग-वियोग वर्णन परम्परा विनिर्मुक्त कदापि नहीं, प्रत्युत् शास्त्राय दृष्टि से जयदेव के निकट है। उदाहरणार्थ देखें—

“भोर पिया सखि गेल दुरि देश ।

जौवन दए मेल साल सनेस ।

मास आसाढ़ उनत नव मेघ ।

पिया विसलेख रहओ निरयेघ ॥

कौन पुरुष सखि कौन से देश ।

करब मोय तहाँ जोगिन भेस ॥

उपर्युक्त वर्णन में किंचित् मात्र भी ध्यान नहीं आता कि राधा-कृष्ण हमारे आराध्य देव हैं। निश्चय ही इसमें ‘भक्ति-भाव की जरा भी सुगन्धि नहीं है।’

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि ऐसे वर्णन में वे भक्ति की सीमा से ऊपर उठ गये हैं—केवल कवि मात्र रह गये हैं। विद्यापति ने, किसी सम्प्रदाय विशेष में सीमाबद्ध न होने के कारण, ऐसा वर्णन किया है और नहीं तो सब कुछ कहने के बाद यह भी कहना पड़ता कि कृष्ण आराध्य है, और राधा आराध्या। परन्तु इस कथन से ही स्पष्ट है कि भावावेश में वे भक्ति की सीमा से बाहर चले जाते हैं। और कवि तभी कविता की सृष्टि करता है जब उसके अन्दर भावों का प्रवल वेग आता है, एक अपूर्व अनुभूति से उसका हृदय आप्लावित हो उठता है। प्रस्तुत स्थल पर हमें Wordsworth की पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—

Poetry is the spontaneous overflow of powerful feeling; it takes its origin from emotion recollected in tranquillity.

विद्यापति ने भी भक्ति-भावना से नहीं प्रत्युत् उस सीमा से अलग हटकर, पूर्णतया अन्य वातावरण में रम कर कविता की है। और यदि भार-तेन्दु के कथनानुसार विद्यापति की कविता भक्ति-परक न हो सकी तो श्रृंगारिक अवश्य है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उनकी कविता का मुख्य रस श्रृंगार ही कहना उचित है। यों तो इनके पद कई कोटि के हैं —

(क) श्रृंगार-सम्बन्धी-इस वर्ग में राधा-कृष्ण-मिलन के प्रेम पूर्ण पद ।

विचार और अध्ययन]

(ख) भक्ति-सम्बन्धी-इस वर्ग में शिव, दुर्गा, गंगा, आदि के प्रति-प्रार्थना तथा निवेदन है, परन्तु इस प्रकार की रचनाएँ भी श्रृंगार सम्बन्धी रचनाओं से कम हैं।

(ग) काल-सम्बन्धी—जो वीर गाथा काल की प्रचलित पद्धति के अनुसार है।

(घ) नीति परक—इसमें नीतिपरक तथा उपदेशात्मक कविताएँ हैं—

ए सखि की कहव अपनुकद्वन्द, सपनहुं जनु हो कुपुरुष संग।

दूधे पटाइअ सीचिअ नीत, सहजन तेज करइला तीत ॥

(ङ) इस वर्ग के अन्तर्गत विद्यापति की उन पंक्तियों को रखा जा सकता है जिनमें समाज की कुरीतियों के प्रति गहरा व्यंग्य है; बाल-विवाह आदि पर कठोर प्रहार किया गया है। उदाहरण—

पिया मोर बालक हम तरुन। कोन तप चुकलौह भेलौह जननी ॥
पहिर लेल सखि एक दखिनक चीर। पिया के देखैत मोर दगध सरीर ॥
पिया लेली गोद कै चललि बजार। दटिया के लोग पूछे के लागु तोहार ॥

परन्तु हर एक व्यक्ति (कलाकार का किसी एक विशेष रस में हृदय अत्यधिक निमग्न रहता है। जैसे बिहारी का श्रृंगार रस और तुलसी का भक्ति रस में; उसी प्रकार अमुक कवि का मन-भ्रमर भी अमुक रसमंजरी के चारों ओर गुंजार करता रहता है। और इसी दृष्टि से देखें तो हम उनकी कविता में (विद्यापति की कविता में) श्रृंगार को ही मुख्य मानेंगे। और रस अंगी है, अप्रधान है। विद्यापति की नायिका का विरह कृष्ण के उन्हें सोती छोड़ जाने से प्रारम्भ होता है—

एक सयन सखि सूतल रे, आछल बालम निसि भोर।

न जानल कतिखन तेजि के गेल रे, विछुरल चकवा जोर ॥

उनकी नायिका नायक के अभाव में, वर्षा की रात में, काम-पीड़ित हो पुकार उठती है—

सखि हे हमर दुखक नहिं ओर।

इ भर बादर माहभादर सून मंदिर मोर ॥

भूमिघन गरजन्ति सन्तति, भुवन भरि बरसन्तिया।

कन्त पाहुन काम दारुन सघन खर सर हन्तिया ॥

इसीलिए दिनकर जी का स्पष्ट मत है—“अध्ययन के बाद यह बात मन में बैठ गई है कि श्रृंगार में अगर मेरा कवि कहीं कोई हो सकता है तो वे

[विद्यापति की पदावली का मुख्य रस]

विद्यापति हैं। उनकी दो बातें मुझे बहुत प्यारी लगती हैं। एक तो यह कि वासना से वे लज्जाते नहीं, हृदय खोलकर पाठकों के सामने अपने मन की बातें रख देते हैं। दूसरी यह कि उनकी नायिका नागरिक नहीं, गाँव की भोली-भाली बालिका है और यह बालिका बिना बनावकेही सुन्दर लगती है। X ऐसी अवस्था में विद्यापति की नायिका के सम्मुख प्रश्न है—

विद्यापति कह कह से गमाओव ।

हरि बिना दिन रातिया ॥

दिन बीतते जाते हैं। नायिका का नागर अब भा उससे दूर है—

“सखि मोर पिया अबहु न आओल कुलिस हिया ।”

कोई भी समाचार-संदेश कहने नहीं आता—

नागर हमर रहल दुर देस । केओ न कहइ सखि कुशल सनेस ॥

जुग जुग जीवथु बसथु लाख कोस । हमर अभाग हुनक नहिं दोस ।

हमर करम भेत्त बिहि विपरीति । पिया बिसरल सखि पुरुब पिरीति ।

कन्त लौटा नहीं। नायिका के प्राण कंठगत हो गये—

लोचन धाएफेधाएल, हरि नहिं आयल रे ।

सिवसिव जिवओ न जाए, आम्र अरुभाएल रे ॥

एक दिन नायिका को नींद में प्रिय-दर्शन हुआ। परन्तु, उसी समय उसकी नींद टूट गयी—

सुतल छुतहुँ हम घरवा रे गरवा मोतिहार ।

राति जखन भिनुसरवा रे पिया आयल हमार ॥

कर कौसल कर कँपइत रे हरवा उर टार ।

कर पंकज उर थपइत रे मुख चन्द निहार ॥

केहनि अभागलि बैरिनि रे भागलि मोर निद ।

अब वह स्वप्न में भी नहीं आता है। नायिका नायक को प्राप्त करने के लिये काम में उद्विग्न है—

सपनहुँ हरि नहिं आयल रे गोकुल गिरधारी ॥

नायिका को चन्द्रमा की शीतलता, चन्दन का अंगलेप, मृगमद का सौरभ, सभी व्यर्थ लगते हैं—

मृगमद चानन परिमल कुंकुम के बोल सीतल चन्दा ।

पिया बिसलेख अनराजों बसिये विपति चिह्ण भल मन्दा ॥

Yeats की नायिका की भी अवस्था विद्यापति की नायिका की तरह थी—

X श्री दिनकर—मेरी पसंद की कविताएँ (लेख)

विचार और अध्ययन]

A girl arose that had red mournful lips
And seemed the greatness of the world in tears
Doomed like Odysseus and the labouring ships
And proud as priam murdered with his peers
Arose, and on the instant clamorous eaves,
A climbing moon upon an empty sky,
And all that lamentation of the leaves,
Could but compose man's image and his cry.'

नायिका प्रमोन्मत्त काक से कहती है—

काक भाख निज भाखहरे पहु आओत मोरा ।

खीर खाँड़ भोजन देव रे भरि कनक कटोरा ॥

इसी प्रकार स्पष्ट है कि उनकी कविता का मुख्य रस शृङ्गार ही है । उमेश मिश्र, केशरी, कपिल, हरप्रसाद शास्त्री आदि भी इसी बात से सहमत हैं । सूर्यकान्त शास्त्री ने भी इसी ढंग की बात कही है—“विद्यापति ने संस्कृत साहित्य की ऐन्द्रिक कविता को निचोड़ कर कुंजों में बन्द कर दिया है ।” महाकवि रवि बाबू ने भी कहा है—“विद्यापति की राधा में चंचलता, विलासता है और चंडी दास की राधा में तरलता और गम्भीरता है ।”—और हम उपयुक्त आधारों से स्पष्ट कर चुके हैं कि उनकी कविता का मुख्यरस शृंगार ही कहना उपयुक्त है, नहीं तो रीतिकाल भी भक्ति-काल बन जायगा । उनके शृंगार पूर्ण वर्णन में भी आध्यात्मिकता का आरोप किया जाने लगेगा ।

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने व्यङ्ग्य करते हुए स्पष्ट कहा है—“विद्यापति के ‘रति सुविसारद’ कृष्ण के साथ कोकशास्त्रीय संभोग-केलि का वर्णन तो सर्वथा अवर्णनीय है ही । यदि यह सब किसी भी प्रकार ‘भक्ति-भाव’ सिद्ध हो सकता है तो बिना किसी आवेश के प्रत्येक उत्तान शृंगार-वर्णन को उत्कट भक्ति का चरम विकास सिद्ध किया जा सकता है । जिन्होंने ‘अमरुक शतक’ के उद्दाम शृंगार की वेदांती व्याख्या की है, वह भी तो कोई ज्ञानी भक्त ही होंगे !” * ‘निश्चय ही रीति काव्यकी ऐन्द्रिय शृंगारिकता का तो विद्यापति में अपार वैभव है ।’ X

—१९५० ई०

+ Yeats-The sorrow of love

* आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री—चिन्ता धारा

X डा० नगेन्द्र—रीति काल की भूमिका

भक्त तुलसी की काव्य-साधना

मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य के महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का अमर कलाकृति में भक्ति और कला का अपूर्व सामंजस्य है और मुझे यह कहने में किंचित् मात्र भी संकोच नहीं कि वे पहले अनन्य भक्त, शील-सौंदर्य-शक्ति समन्वित मर्यादा पुरुषोत्तम, मंगलमय, शाश्वत् भगवान् श्री रामचन्द्र के निष्कपट, निश्छल दास हैं, फिर एक कलाकार । इनकी कला में कल्याणकारी 'प्रजा सुखारे', 'प्रणतपाल भगवन्ता' के गुणों का, उनके जीवन की विशेषताओं का, नररूप में अवतरित (विप्र-धेनु-सुर-सन्त-हित, लीन्ह मनुज अवतार) राम के, जन-रक्षार्थ, 'कथा-कलापो का गुण-गान एवं वर्णन है और पूर्ण तन्मयता के साथ । परमब्रह्म, चिरन्तन, सच्चिदानन्द के प्रति जो प्रेम और उसके प्रति अनुराग और आकर्षण तथा उसके दर्शन की अभिलाषा भक्त के हृदय में होती है, उसकी अभिव्यक्ति भक्त भावुकता के आवेश में पूर्णतया कर देता है । वह कुछ छिपाता नहीं; यहाँ तक अपनी भूल, हीनता तथा मूर्खता को भी नहीं । वह अपने आराध्य के प्रति दुराव-छिपाव भी किस प्रकार कर सकता है ? वह तो अपना सर्वस्व अपने आराध्य के पावन चरणों पर समर्पित कर देता है । इसी अनुराग को मानवाय भाषा में हम 'भक्ति' की संज्ञा देते हैं ।

भक्ति की परिभाषा विभिन्न साहित्याचार्यों तथा आध्यात्मवादियों ने विभिन्न ढंग से प्रस्तुत की है:—

श्री कृष्ण का वचन है—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।

भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ ×

वेदव्यास कहते हैं:—

देवानां गुणलिंगानामानुश्रविक कर्मणाम् ।

सत्त्व एवैक मनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तुया ॥

अनिमित्ता भागवति भक्तिः सिद्धेर्गौरायसी ॥ +

शाण्डिल्य के मतानुसार:—

सा परानुरक्तिरीश्वरे (शाण्डिल्य भक्ति सूत्र १।१।१॥)

× गीता अ० ६ श्लो० १३-१

+ श्री मद् भागवत स्कं० ३ अ० २५ श्लो० ३२-३३

विचार और अध्ययन]

सर्वस्मादधिकः स्नेहो भक्तिरित्युच्यते बुधैः (शाण्डिल्य तत्व सुधा)
तुलसी ने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की है—जातें बेगि द्रवउं
मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ।

अर्थात् द्रवीभूत करने वाली शक्ति पर कवि का विशेष ध्यान केन्द्री-
भूत मालूम पड़ता है ।

भक्ति को हम 'भक्त का हृदय' नाम से भी अभिहित कर सकते हैं ।
उनका बाल्यकाल से प्रौढ़ावस्था तक सम्पूर्ण जीवनवृत्त राम-रस से आप्लावित
रस-सिक्त है । भक्ति में आत्मानुभूति और आत्माभिव्यक्ति (Subjecti-
vity and self expression), भाव का केन्द्रीयकरण (Centralised
thought), संक्षेप, लाघव (Brevity), गेय एवं सगीतात्मकता (Lyri-
cal element), भाव-प्रबलता और तन्मयता के अनिवार्य आग्रह के परि-
णामस्वरूप उनकी कलाकृति विनय-पत्रिका आदि गीतिकाव्य के श्रेष्ठ
उदाहरण हैं:—

केसव, कहि न जाइ का कहिये ।

देखत तव रचना बिचित्र अति, समुझि मनहिं मन रहिये ॥१॥

सून भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।

धोये मिटै न मरे भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे ॥२॥

रविकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूख तेहि माहीं ।

बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥३॥

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।

तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै ॥४॥ I

उपर्युक्त पद में गीति-काव्य तथा भक्ति के तत्त्वों का अवलोकन
सांगोपांग किया जा सकता है । इस दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' कलाकोष की
अपूर्व, अद्वितीय निधि है । उसमें दीनता, मानमर्षता, भयदर्शना, भर्त्सना,
आश्वासन, मनोराज्य, विचारणा विनय की सभी भूमिकाएँ आ जाती हैं ।
डा० रामकुमार ने तो स्पष्ट ही कहा है कि 'सूरदास के विनय-पद अनुभूति
में तुलसीके पदोंसे गहरे नहीं हैं ।'* 'गीतावली' और 'कृष्ण-गीतावली' गीति-
काव्य के अन्तर्गत ही हैं । 'गीतावली' में आत्माभिव्यंजना तो नहीं, परन्तु
भाव का केन्द्रीयकरण और गेयता अवश्य हैं । डा० सुधीन्द्र का यह कथन

I तुलसीदास—विनय पत्रिका

* डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

[भक्त तुलसी की काव्य साधना]

चाहिये कि उसमें आत्मगतता से अधिक परगतता है। उसमें तृतीय पुरुष का वर्णन है। गीतिकाव्य के लिये कथा की वर्णनात्मकता भारी पड़ती है, उसके लिये तो कोई भावात्मक प्रसंग या स्थल ही अधिक उपयोगी होता है। अतः गीतावली में वे ही पद मधुर हो सके हैं, जिनमें भावात्मकता अधिक है और वर्णनात्मकता कम। 'X' गीतावली में राम के जीवन के मर्म-स्पर्शी स्थलों को विविध राग-रागनियों में गाया गया है। गीतावली का बालकाण्ड सुर की बालकृष्ण-लाला से पूर्ण-साम्य है। वहाँ भी तुलसी राम के लोकरंजनकारी रूप को नहीं भूले हैं। गीतावली तुलसी की काव्य-कला की मधुर अभिव्यक्ति है, उसमें ब्रजभाषा का माधुर्य है, भावों की कोमलता है। परन्तु वर्णनात्मकता ने काव्य के सौन्दर्य को कम कर दिया है। इसी-लिये डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है "गीतावली तुलसीदास को ब्रजभाषा पर अधिकार रखने का प्रमाण तो अवश्य दे सकती है, किन्तु गीतिकाव्य में सर्वश्रेष्ठ कवि प्रमाणित नहीं कर सकती।" + डा० माता प्रसाद गुप्त भी इसी कथन से सहमत हैं।

'कृष्ण-गीतावली' देखने से ऐसा मालूम पड़ता है कि कवि ने राधा और राम में अभेद-भावना के प्रदर्शन के निमित्त इस पद-संग्रह को प्रस्तुत किया है। इसमें भाव-प्रवणता कम ही है। अगीति-मुक्तकों के रूप में बरवै, सतसई दोहावली, कवितावली तथा बाहुक हैं। यद्यपि इनमें कहीं-कहीं अच्छे मुक्तकों के भी दर्शन होते हैं, परन्तु कम। इसीलिये इस क्षेत्र में तुलसी को अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। फिर भी सम्पूर्ण गीतिकाव्य की दृष्टि से हमें डा० माता प्रसाद के शब्दों को कहना ही पड़ता है कि "आत्माभिव्यञ्जना के गीतिकाव्य के विषय में वे एक अत्यन्त सफल कलाकार प्रमाणित होते हैं" *

पुनः मैं यहाँ यह कहते संकोच नहीं कर सकता कि उनकी इसी भक्ति भाव-धारा के आधार भूत एवं प्राणभूत तत्व के अनिवार्य परिणाम-स्वरूप उनके महाकाव्य में व्याघात भी उपस्थित हुआ है, जो उनकी मनोवृत्ति के अनुरूप ऐसा हुआ है। जब साहित्यिक पाठक, रसान्वेषी, मनन-कर्त्ता मधु-मति भूमिका में प्रवेश कर रस का आस्वादन करने लगता है, तब आलम्बन, अनुभाव आदि के 'समूहालम्बनात्मकता' से ब्रह्मानन्द सहोदर अलौकिक, अपूर्व,

X डा० सुधीन्द्र तुलसी का गीति-काव्य (लेख)

+ डा० रामकुमार वर्मा—हि० सा० का आ० ई०

* डा० माता प्रसाद गुप्त—तुलसीदास

विचार और अध्ययन]

अखण्ड रस की पीयूष-धारा फूटती है; उसी समय 'राम देवता हैं, नर-लीला कर रहे हैं', तुलसी के इस कथन से व्याघात होता है। देवता के आलम्बन होने से रस-निष्पत्ति नहीं होती। देव-विषयक रतिभाव मात्र हो जाता है। मेरे इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि साध्य के साधन निमित्त अर्चना और व्यञ्जना के स्वरूप साहित्य और काव्य को ग्रहण किया है तुलसी ने। उनके आध्यात्म की गंगा में पवित्रता है, शीतलता है और है मुक्ति की शालीनता, जिसमें किसी भी आध्यात्म और दर्शन से विरोध न होकर, राम के सगुण भक्ति में ही सबका समाहार कर दिया है—

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा ।

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण, विगत विनोद ।

जो अज प्रेम भगति बस, कौशल्या के गोद ॥

हमारे विद्वान, हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखकों ने ठीक ही कहा है कि उस समय देश की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियाँ साहित्यको भक्ति की ओर ही उन्मुख कर रही थीं। इसी से तो लगभग १३७५ से १७०० तक के सम्पूर्ण साहित्य में भक्ति का अनिवार्य स्रोत प्रवाहित हो रहा था। "इसीलिये ऐसे युग के सभी कलाकारों के साध्य, चरम लक्ष्य शाश्वत भूमा है—चाहे वह निर्गुण हो या सगुण ।" ×

तुलसी ने तो सम्पूर्ण जगत को ही राममय अनुभव किया -

सीय राम मय सब जग जाना ।

करौं प्रणाम जोरि जुग पानी ॥

फिर साहित्य और ऐसे भक्त के हृदय तथा मस्तिष्क से निम्नत-कला भक्ति-पूर्ण हो तो अस्वाभाविक नहीं, प्रत्युत् नैसर्गिक ही है। मैं मानता हूँ कि महाकवि, भक्त शिरोमणि तुलसी ने प्रचलित सभी पद्धतियों में अपने आराध्य का गुणगान किया; इससे कला की समृद्धि भी हुई। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि तुलसी ने निम्नलिखित काव्य-पद्धतियों का उपयोग किया है:—(१) दोहा-चौपाई वाले चरित्र-काव्य, (मानस) (२) कवित्त, सवैया (कवितावली), (३) दोहा में आध्यात्म और धर्म-नीति के उपदेश (दोहावली), (४) बरवै छंद (बरवै), ५) सोहर छंद, (६) विनय के पद (विनय पत्रिका), (७) लीला के पद, (८) वीर काव्यों के लिए उपयोगी छप्पय, तोमर, नाराच आदि की पद्धति, (९) दोहों में सगुण विचार और १०) मंगल-काव्य (पार्वती-

× पं० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास

+ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी-साहित्य का आदिकाल

[भक्त तुलसी की काव्य साधना
मंगल, जानकी-मंगल) । इन सभी के अन्दर उनकी आत्मा-भक्ति ही प्रधान
है, परन्तु कला से युक्त । गीतिकाव्य में उनकी सफलता का कारण मैं यही
मानता हूँ ।

डा० रांगेय राघव की यह युक्ति सत्य ही है कि 'तुलसीदास का प्रभाव
गहरा इसलिए पड़ा; क्योंकि इनके दो रूप थे—(१) सुन्दर काव्य शक्ति रखने
वाला कवि और (२) धार्मिक स्वरूप ।' + स्पष्ट है, काव्य-कला के साथ भक्ति-
भावना के कारण भारतीयों पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा क्योंकि भारतीय
अत्यधिक धर्म एवं आध्यात्म से अनुप्राणित रहते हैं ।

महात्मा गांधी ने ठीक कहा है कि “राम शब्द के उच्चार से लाखों-
करोड़ों हिन्दुओं पर फौरन असर होगा और गॉड (God) शब्द का अर्थ
समझने पर भी उसका उन पर कोई असर न होगा ।” × इसीलिए तुलसी-
दास ने भारतीयों के कल्याणार्थ, श्रुति-सम्मत, हरि-भक्ति-पथ ही उचित
समझा । प० रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन पूर्ण सत्य है कि “यदि कोई
पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला कवि
कौन है, तो उसका एक मात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत हृदय-
भारती कंठ भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास ।”*

श्री रामनरेश त्रिपाठी के कथनानुसार भी हमारे ही कथन की पुष्टि होती
है कि वे सभी वर्णन में राम को देवता-स्वरूप वर्णन कर ही बैठते थे । डा०
माता प्रसाद ने ठीक ही कहा है कि “राम-भक्ति के अभाव में शेष समस्त
परामार्थ को वे हेय समझते थे । यहाँ तक कि मुक्ति को भी और इस तथ्य
को उन्होंने नाना रूपों में व्यक्त करने का प्रयास किया है । उनका सारा
रामचरित-मानस इसी तथ्य को प्रस्तुत करने का एक विराट् आयोजन मात्र
प्रतीत होता है ।”

इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि मैं उनके सम्पूर्ण काव्य को काव्य-
कला से हेय कह रहा हूँ । परन्तु इतना तो अवश्य है कि कई स्थल पर
राम देवता हैं कहने से साधारणीकरण की स्थिति नहीं होती, जिससे रस-
निष्पत्ति हो । फिर भी बहुत से स्थल हैं, जहाँ पूर्ण रस की निष्पत्ति
होती है ।

तुलसी को कई भाषाओं पर सुन्दर अधिकार था । अवधी में रामायण
से श्रेष्ठ रचना हिन्दी-साहित्य में नहीं । विनय-पत्रिका, गीतावली आदि में

+ डा० रांगेय राघव — रामचरित मानस (लेख)

× महात्मा गांधी—धर्म-पथ

* प० रामचन्द्र शुक्ल—दृ० ग्रं० तृती० भा०

विचार और अध्ययन]

ब्रजभाषा बड़ी परिष्कृत है। उर्दू, फारसी के शब्दों का भी जैसे गरीब, नेवाज आदि का प्रयोग किया गया है। 'राम कहत चलु' में भोजपुरी का प्रयोग है। बुन्देली शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। अलंकारों में रूपक, उपमा, उदाहरण, दृष्टान्त और उत्प्रेक्षा आदि उन्हें अधिक प्रिय हैं। वे सरलता के प्रेमी थे—

सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूति ।

तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति ॥

डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि 'सरल, स्वाभाविक और विदग्धता पूर्ण वर्णन तुलसीदास की शैली की विशेषता है; पर तुलसीदास की प्रतिभा इतनी उच्चकोटि की है, उसमें अलंकार स्वाभाविक रूप से चले आते हैं।'।

उन्हें अन्तः प्रकृति की भी खूब परख थी। राम के अयोध्या लौटने पर जब सुग्रीव और विभीषण ने राम और भरत का मिलन देखा तो—

“सघन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यो फेट ।

त्यों सुग्रीव विभीषनहिं भई भरत की भेंट ॥”

कवियों की कई श्रेणियाँ होती हैं। प्रथम कोटि वह हैं जिसमें कवि का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक और प्रभावपूर्ण होता है। जिसमें भाव-पक्ष और कला-पक्ष का समुचित संतुलन रहता है। कवि तत्पुगीन-चित्र अंकित करते हुए भी आदर्श की ओर उन्मुख रहता है। निर्माण का संकेत और समाधान भी देता है। तुलसी में प्रथम श्रेणी के सभी गुण वर्तमान थे। मार्मिक स्थलों का सफल चयन, प्रसंगानुकूल भाषा, काव्य के सभी अङ्गों का उचित समीकरण, शृंगार का संयमित वर्णन आदि कारणों से उनकी कला को कसौटी पर कसने पर कंचन की तरह निखर उठी है। हरिऔध ने ठीक ही कहा है कि 'कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी वा तुलसी की कला'। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र का कथन पूर्ण सत्य है कि 'गोस्वामीजी ने जैसी असाधारण भाव-राशि पाई थी, वैसी ही विलक्षण कुशाग्र बुद्धि भी पाई थी'।^x उनमें कुछ दोष भी थे, परन्तु न्यून और अत्यधिक गुणों के सम्मुख उनपर ध्यान भी नहीं जाता। श्री रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में 'उनका कोई भाव क्लिष्ट या अस्पष्ट नहीं है।' + इसलिए अन्ततः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भक्त तुलसी एक साधारण कवि नहीं, वरन् विश्व कवि थे, महाकवि थे। अन्त में हम श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों को दुहराते हैं— 'जब तक हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-भाषी हैं, तब तक सूर और तुलसी का जोड़ा अमर है।'।

—१९४८ ई०

× डा० बलदेव प्रसाद मिश्र — तुलसी दर्शन

+ रामनरेश त्रिपाठी — तुलसीदास और उनकी कविता ।

महाकवि तुलसी और कमल

ॐ नमः शिवाय

प्रकृति और मनुष्य में गहरा संबंध है। हिन्दी के वयोवृद्ध लेखक पं० छविनाथ पांडेय ने ठीक ही लिखा है—‘प्रकृति स्वर्ग का उद्यान है।’ वह परम सुन्दर है और सतत-नवीन भी। इसलिए प्रसाद ने कामायनी में कहा है—

प्रकृति के यौवन का शृंगार
करोगे कभी न बासी फूल।

प्रकृति के अद्भुत आकर्षण से अभिभूत हो अंग्रेजी-साहित्य का परम लोक-प्रिय कवि Keats कहता है—

When all the birds are faint with the hot Sun,
And hide in cooling trees, a voice will run
From hedge to hedge about the new mown mead;
The poetry of the earth is never dead.

साहित्य मानवीय भावनाओं का संगृहीत कोष है। मनुष्य की क्रिया-प्रतिक्रिया और उसके आत्मानुराग साहित्य में व्यंजित होते हैं। अतः साहित्य में प्रकृति का स्थान अक्षुण्ण है। पुष्प प्रकृति का आभूषण है जिससे सुसज्जित होकर प्रकृति लुभावनी बनती है; और उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रत्येक भू-भाग में, अंचल में अपनी नवीन पुष्पावली बिखेरती है, भले ही इसके वैज्ञानिक आधारभूत कारण जो हों। और, उक्त आधार के फल-स्वरूप प्रत्येक साहित्य में विभिन्न पुष्पों का वर्णन है।

संस्कृत-साहित्य में पद्म, केतकी, कदंब, कुसुम आदि की महत्ता अत्यंत उद्गार के साथ वर्णित है। संस्कृत-साहित्य से प्रभावित प्रत्येक साहित्य में पारिजात, पद्म आदि का बड़ा ही भव्य चित्र अंकित है। मराठी-साहित्य में शेवंती पारिजात, जाक्यागा (चंपा) जाई, जुई (जुही), मोगरा (बेला), वकुड़ी (वकुल), भंडू (गेंदा) आदि का अत्यधिक वर्णन है। तांबे आदि प्रकृति-कवि की कविताओं में इन पुष्पों की बहार है।

“अंगणाच्या सोनचाफ्या ! करू नको तूगा तोरा ।
रंगमा माझ्या सोनुल्याचा पहा किती गोरा गोरा ॥”

* * *

‘आमरा बेधिछि काशेर गुच्छ, आमरा ।
गेंयेछि शेफालि-माला ।

विचार और अध्ययन]

नवीन धानेर मंजरी दिये साजिये एनेछि डाला ।

एसोगो शारद लक्ष्मी, तोमार

शुभ्र मेघेर रथे ,

एसो निर्मल नील पथे ,

एसो धौत श्यामल आलो-भलमल

बन गिरि पर्वते,

एसो मुकुटे परिया श्वेत शतदल

शीतल शिशिर डाला ॥

भरा मालतीर फूले, आसन बिछानो निभृत कुंजे

भरा गंगार कूले... +

उर्दू-साहित्य में नर्गिस, लाला, गुलाब, यास्मिन, जुही आदि पुष्पों को लेकर बड़े ही आकर्षक चित्र उपस्थित किये गये हैं। 'नाजकी उसके लव की क्या कहिए, पंखड़ी एक गुलाब की सी है।'—मीर

हुआ खीमाजन करवाने बहार

अरम बन गया दामने कोइसार

गुलो नरगिसो सौ सनो नस्तरन

शहीदे अजल लालखूनी कफन—

जहाँ छप गया पर्दे-रंग में

लहूकी हैं गर्दिश रंग-संग में

फिजा नीली-नीली हवा में सरुर

सहरेत नहीं आशिआँ से तयूर । ×

इसी प्रकार अंग्रेजी-साहित्य में Daffodils Lilly, Rose, Lotus आदि पुष्पों के वर्णन का प्राबल्य है।

साहित्य में पुष्पों का प्रयोग कई उद्देश्य से किया जाता है। प्रतीकार्थ, स्वाभाविकता, उपमा आदि की दृष्टि से इनका प्रयोग प्राचीन काल से आज तक होता आ रहा है और होता रहेगा। हिन्दी-साहित्य के परम प्रसिद्ध महाकवि तुलसीदास ने विविध पुष्पों का प्रयोग अपनी कला-कृतियों में किया है। परन्तु कमल उनका परम प्रिय पुष्प दीख पड़ता है। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सभी क्षेत्रों में वे इसकी योजना कर बैठते हैं—

+ रवीन्द्रनाथ—गीतांजलि

× डा० सर महमूद 'इकबाल'—साकीनामा

सुंदर वदन सरसीरुह सुहाए नैन ,
मजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के ।
अंसनि सरासन लसत, सुधि कर सर ,
तून कटि मुनिपट लटक पटनि के । +

प्रस्तुत पंक्तियों में भी 'कमल' का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग है—

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव भय दारुणम्
नवकंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणम्
कर्प अगणित अमित छवि नवनील नीरज सुन्दरम्
पट पीत मानहु तड़ित रूचि सुचि नौमिजनक सुतावरम्

तुलसीदास ने शील-शक्ति-सौंदर्य-समन्वित अपने आराध्य के अंग-उपांग के लिए कमल का अत्यधिक प्रयोग किया है । इस आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त पुष्प उन्हें अत्यंत प्रिय था । उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के पद को भी कमल स्वरूप माना है—

पावन प्रेम रामचरण कमल जनम लाहु परम ।
राम नाम लेत होत, सुलभ सकल धरम ॥

तुलसीदास संस्कृत के भी महान विद्वान थे । नाना वेद-पुराणों का उन्होंने अध्ययन-मनन किया था । संस्कृत-साहित्य में 'कमल' की अत्यधिक चर्चा है । हो सकता है, तुलसीदास पर अपनी परंपरा के प्रति अगाध प्रेम होने के कारण इसका प्रभाव या प्रेम हो ।

भारतवर्ष में कमल पुष्प की संख्या बहुत है । यत्र-तत्र सरिताओं में इसकी छटा दीख पड़ती है । वस्तुतः कमल अत्यंत ही सुन्दर पुष्प है । सूर्य की सुनहरी किरणों के पुलक-स्पर्श से जागना और उसके मधु कोष में रात्रि-काल में मधुकर का विश्राम लेना, आदि ऐसी रोमांचित करनेवाली अनु-श्रुतियाँ हैं जिनसे आदि काल से भावुक, अनुभूतिपूर्ण और सौंदर्य-परायण कवियों की दिव्य आँखें उसपर आ अटकती हैं । सौंदर्य चयन में कवियों की कलम बड़ी चतुर होती है । तुलसी एक सच्चे कवि थे—महाकवि थे । अतः उनमें उपर्युक्त तत्वों का होना स्वाभाविक ही है ।

हम प्रायः शृंगार रस में फूलों की सुपमा अत्यधिक देखते हैं । अतः यह स्वाभाविक जान पड़ता है कि कवि समाज सौकुमार्य या सौंदर्य-वर्णन करते समय फूलों का स्मरण करे । भक्तिकाल में अबाध-गति से प्रवाहित

विचार और अध्ययन]

भक्ति-भावधारा में सौंदर्य का अंतःस्त्रोत फूट रहा था जो कृष्ण-भक्ति-शाखा की काव्य-सर्जना में मूलरूप से कार्य कर रहा था । अंततोगत्वा वह रीतिकाल के विलासी युग में, विराट रूप में परिणत हो गया । सौंदर्य प्रबल आकर्षण-युक्त प्राकृत वस्तु है । अतः उसकी अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष (Direct) या प्रच्छन्न (Indirect) रूप से होगी ही । परन्तु, हिन्दी-साहित्य के इतिहास के पाठकों को यह स्मरण रहना चाहिए कि रामाश्रयी शाखा में शील और मर्यादा के यथोचित निर्वाह का प्रयत्न है ; इसीलिए इस शाखांतर्गत वर्णित सौंदर्य गंभीर और संयत है । महाकवि तुलसीदास ने अपने आराध्य राम और सीता आदि के आकर्षण-युक्त रूप का वर्णन किया है और भरपूर सुन्दरता, शालीनता तथा पवित्रता व्यंजित करने में उन्होंने 'कमल' का अत्यधिक प्रयोग किया है । इस प्रकार उनके काव्य के अंतर्गत कमल की महत्ता समझी जा सकती है । कई स्थलों पर तो उपमा को उपमेय के संमुख हीन होना पड़ा है । यथा—

सोहत सहज सुहाए नैन ।

खंजन मीन कमल सकुचत तब

जब उपमा चाहत कवि दैन ।

—गीतावली

तुलसीदास ने हनुमान, शिव, गुरु आदि के अंगों की उपमा के लिए भी 'कमल' का खुलकर प्रयोग किया है । परन्तु कभी-कभी मालूम पड़ता है कि इन्हें इससे सुन्दर दूसरी उपमा सूझती ही नहीं; और तब नए पाठक सोचने लगते हैं कि तुलसीदास शायद अन्य उपमा नहीं जानते थे ।

मुख पंकज, कंज विलोचन मंजु, मनोज-सरासन-सी बनी भौंहें ।

कमनीय कलेवर, कोमल, स्यामल, गौर-किसोर जटा सिर सौहें ॥

निम्न पंक्तियों में देखें, पैर और हाथ, दोनों के लिए 'कमल' की उपमा दी गई है —

पद—कंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं सर-पंकज-पानि लिए ।

लरिका-संग खेलत डोलत हैं, सूरज-तट चौहट-हाट-हिए ॥

निस्संदेह इस प्रकार की लगातार उपमाएँ खटकने-वाली हैं; किन्तु यह भी सच है कि महाकवि ने इसका प्रयोग जान-बूझकर किया है । कमल एक सर्वप्रिय पुष्प है । अतः अपने आराध्य की उपमा के लिए सर्व प्रिय वस्तु को छोड़कर और किसी वस्तु का उपयोग कैसे किया जाता ?

[संबत् १९५२ ई०]

तीन महाकवियों का शिशु-साहित्य

सूर, तुलसी और रवीन्द्र, तीनों ही अपने-अपने युग के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में हैं। तीनों सच्चे कवि हैं, महाकवि हैं। परन्तु जहाँ रवि बाबू में रहस्य की प्रधान प्रवृत्ति है, वहाँ सूर और तुलसी पूरे भक्त। उन्हें संशय नहीं कि जगत में किसकी मुस्कान बिखरी है, कौन इसका संचालक है और इसी मूलभूत प्रवृत्ति विभिन्नता के फलस्वरूप सूर और तुलसी एक वर्ग और रवीन्द्र नाथ दूसरे वर्ग के कवि माने जाते हैं।

निराला की वाणी सत्य ही है 'जो कवि और महाकवि होते हैं वे प्रकृति के हर एक कमरे में प्रवेश करने का जन्मसिद्ध अधिकार लेकर आते हैं। वे प्रकृति की प्रत्येक भूमि पर-जनाना महल में भी-बेधड़क चले जाते हैं। प्रकृति को उनपर अविश्वास नहीं। वह उन्हें अपना बहुत ही सच्चरित्र और सुशील बच्चा समझती है, उनसे उसे किसी अनर्थ का भय नहीं।' * कलाकार की मुक्त चेतना, समवेदनशीलता उसे जगत् में परिव्याप्त मार्मिक दृश्य-विधान, सूक्ष्मतरंग-संदेश एवं धनीभूत असौन्दर्य से लिपटे सूक्ष्म सौन्दर्य की ओर नैसर्गिक रूप में, प्रवृत्त्यानुसार, आकर्षित करती रहती है। यही कलाकार की महत्ता एवं महत्वपूर्ण पैनी दृष्टि है जिस आधारभूत कारण से वह समाज के बीच, हृदय और मस्तिष्क के मध्य सम्मान का अधिकारी स्वभावतः सिद्ध होता है। फिर जीवन का जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल वाल्यावस्था है, उसे कोई सच्चा कवि कैसे उपेक्षणीय कर सकता है।

क्राइस्टनेवालक की महत्ता का उद्घोष करते हुए कहा है—

Verily I say unto you, except ye be converted and become as little children, ye shall not enter into the kingdom of Heaven. वे पुनः आगे कहते हैं—Suffer little children, and forbid them not to come unto me: for of such is the kingdom of heaven.

हाँसी बिन हेतु माहिं दीसति बतीसी कछू ,
निकसी मनो है पाँति ओछी कलिकान की ।
बोलन चहत बात निकसि जाति टूटी-सी ,
लागाति अनूठी मीठी बानी तुतलानकी ॥

* निराला-रवीन्द्र कविता-कानन

विचार और अध्ययन]

गोदतें न प्यारी और भावै न कोई ठौर ,
दौरि-दौरि बैठै छाड़ि भूमि अँगनानकी ।

धन्य धन्य वे हैं नर, मैले जे करत गात ,

कनिया लगाय धूरि ऐसे सुवनानकी ॥—लक्ष्मण सिंह

अतः तीनों महाकवियों ने शिशु-साहित्य की सृष्टि की और तीनों को इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। सूर ने अपने सखा कृष्ण का बालरूप, बालशोभा चित्रित किया 'नँद के लाल उठे जब सोय । निरखि मुखारबिद की सोभा कहि काके मन धीरज होय ? मुनि मन हरत जुगतिजन केतिक रतिपति मान जात सब खोय ।' और 'सोभा कहत कहे नहिं आवै । अँचवत अति आदर लोचन पुट मन न रूप को पावै । सजल मेघ घनश्याम सुभग बपु तड़ित बसन उरमाल ।'* तो तुलसीदास ने सर्वशक्तिमान, शील और सौन्दर्य समन्वित मर्यादा पुरुषोत्तम का—

'इष्टदेव मम बालक रामा । सोभा बपुष कोटिसत कामा ॥

पीत भीनि भिगुली तन सोही । कलकनि चितवनि भावति मोही ॥

रूप-रासि नृप-अजिर बिहारी । नाचहि निज प्रतिबिब निहारी ॥

लरिकई जँह-जँह फिरहिं , तँह-तँह संग उड़ाउँ ।

जूठनि परई अंजिर महाँ , सोइ उठाइ करि खाउँ ।' और 'रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई ।' तथा रबान्द्रनाथ ने एक साधारण शिशु का जो पूर्णतया मानव है। परन्तु जिस प्रकार सूर और तुलसी के शिशु-चित्रण में देवत्व का संकेत एवं आरोप मिलता है—'बरसत सुमन' और कभी देवता कह कर तुलसी अपनी आत्मा को शान्त करते हैं तदनुरूप यत्र-तत्र सूर भी वैसा ही कहते हैं—'मैया मैं माटी नहिं खाई मुख देखै निबहोगे । बदन उधारि देखायो त्रिभुवन, बन, घन, नदी सुमेर ।' और 'चढ़ि बिमान सुर देखहीं गगन रहे भरि छा़य । जय जय ध्वनि नभ करत हैं हरषि पुहुप बरसाय ।' वहाँ रवि बाबू की मूल प्रवृत्ति रहस्य भी शिशु-वर्णन में व्यंजित हो जाती है। उनके शिशु को प्राकृतिक दृश्यों को देखकर जिज्ञासा उत्पन्न होती है, परन्तु एक साधारण शिशु की तरह नहीं; जो रहस्यवादी कवि ही सोच सकता है, नादान शिशु नहीं—

ओरे तोरा कि जानिस केउ, जले केनो उठे एतो डेउ !

ओरा दिवस रजनी नाचे, ताहा शिखेछे काहार काछे !

* सूर—सूर-सागर

[तीन महाकवियों का शिशु-साहित्य]

सुन चल् चल् हल् छल् सदाइ गाहिया चलेछे जल ।

ओरा कारे डाके बाहु तुले, ओरा कार काले बोसे दुले ?

ओरा सकलेर मन तुषी, आछे आपनार मने खुशी !

जहाँ सूर और सूर से अधिक तुलसी अपने आराध्य शिशु का (कृष्ण और राम) का जन्म अवतार स्वरूप 'भय प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकार' + एक महत्वपूर्ण कार्य-सिद्धि हेतु स्वीकार करते हैं, 'सूरदास प्रभु कंसनिकंदन भक्तहेतु अवतार धरयो', 'गोकुल प्रगट भए हरि आई । अमर उधारन असुर सँहारन अंतरयामी त्रिभुवनराई ।' तथा 'सुर, नर, मुनि करि अभय, दनुज हति, हरहि धरनि गदआई ।' वहाँ रवीन्द्र का शिशु मनुष्य है जिसको पृष्ठभूमि में महती योजना किञ्चित् पूर्व निर्धारित नहीं है । उसका जन्म प्राकृतिक नियमानुसार हुआ है । सम्भव है, प्रस्तुत दृष्टिकोण के पीछे आधुनिक युग की वैज्ञानिकता की देन मौलिक विचार-धारा का प्रभाव हो क्योंकि आज मनुष्य कार्य और कारण का समुचित शृंखला देखना चाहता है, बुद्धि जीवी होने के परिणामतः तार्किक होता है; अलौकिकता के विपरीत लौकिक सत्य को महत्वान्वित स्वीकार करता है और इसी कटु सत्य वैज्ञानिक रूढ़ता के कारण देवता के सम्मुख भी प्रश्नवाचक चिह्न लग गया है । वैज्ञानिक रूढ़ता और नग्नता से उत्पीड़ित Keats ने व्यथित स्वर में कहा था —

Philosophy will clip on Angels wings,
Conquer all mysteries by rule and line,
Empty the haunted air and gnomed mine—
Unweave a rainbow, as it erewhile made

The tender-person'd Lamia melt into a shade *

परन्तु मेरे उपर्युक्त कथन से पाठकों को यह धारणा नहीं होनी चाहिए कि सूर और तुलसी देवत्व आरोप करने के कारण असफल हुए । निश्चय ही सूर-तुलसी का बाल-वर्णन हिन्दी-साहित्य में अपूर्व है, महत्वपूर्ण है । सूर तो शिशु साहित्य के सम्राट ही उद्घोषित हो चुके हैं । 'वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया उतना किसी और कवि ने नहीं । इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे भाँक आए । उक्त

+ तुलसीदास—रामचरित मानस

* Keats—Lamia

विचार और अध्ययन]

दोनों रसों के प्रवर्तक रति भाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों, दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके उतनी का और कोई नहीं।

*** यदि हम मनुष्य-जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र को लेते हैं तो सूरदासजी की दृष्टि परिमित दिखाई पड़ती है। पर यदि उनके चुने हुए क्षेत्रों (शृंगार और वात्सल्य) को लेते हैं, तो उनके भीतर उनकी पहुँच का विस्तार बहुत अधिक पाते हैं।* और मिश्र बन्धुओं ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'सबसे प्रथम जो बहुत उत्कृष्ट वर्णन सूरदास ने किया है, वह कृष्ण की बाल-लीला का है। जैसा उत्तम और सच्चा बाल-चित्रण इस महाकवि ने लिखा है, वैसा संसार भर के किसी ग्रन्थ में हम लोगों ने आयावधि नहीं देखा।' + आज हिन्दी-साहित्य के उद्भट विद्वान आलोचक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी इसी प्राणावेष्टित अभिव्यक्ति के परिणाम स्वरूप, प्रचलित किवदंती कि सूर जन्मांध थे, इसका प्रतिवाद करते हैं। × निःसन्देह यहाँ कुछ सजीव और सुन्दर उदाहरणों को प्रस्तुत करना विषयान्तर न होगा।

सूर ने शिशु का सम्पूर्ण व्यापार, क्रिया-कलाप, रूप-सौन्दर्य, क्रीड़ा एवं संस्कार-उत्सव, मनोभूमि का पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर दिया है। बचपन में अंगूठा मुँह में रखना 'चरण गहे अंगूठा मुख मेलत। नंद घरनि गावति हलरा-वति पलना पर किलकत हरि खेलत', पालना पर माँ का झुलाना, चलना सिखाना 'सिखवत चलन जसोदा मैया। अरबराय करि पानि गाहावति डगमगाय धरै पैया', 'कृष्ण का किलकते हुए चलना 'किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत। मनिमय कनक नंद के आंगन मुख प्रतिबिम्ब पकरिवे धावत। कबहुँ निरखिह रि आप छाँड़ को करसो पकरन चाहत।', चाँद के लिए शिशु कृष्ण का अड़ना 'ले हौं री मा चंद चहौंगो। कहा करौं जलपुट भीतर को बाहर याहि गहौंगो। यह तो झलमलात झरझोरत कैसे कै जु लहौंगो। वह तो निपट निकट ही देखत बरज्यो हौं न रहौंगो।', चाँद की छाया थाली में देख उसे पकड़ने का प्रयत्न करना 'जलपुट आनि धरनि पर राख्यो गहि आन्यो वह चंद दिखावै। सूरदास प्रभु हैंसि मुसुकाने बार बार दोऊ करनावै।', मथानि को नहीं छोड़ना 'मथत दधि मथनी टेकि रखौं', नवनीत खाना, 'सोमित कर नवनीत लिए, घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि लेप किये', माँ का बहाना से दूध पिलाना

* पं० रामचन्द्र शुक्ल — भ्रमरगीत सार की भूमिका

+ मिश्र बन्धु हिन्दी-नवरत्न

× डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी — हिन्दी-साहित्य की भूमिका

[तीन महाकवियों का शिशु-साहित्य]

‘कजरी को पय पिश्रु लाल तेरी चोटी बढ़ै,’ ‘इस पर कृष्ण का वाल्योचित उत्तर—‘मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ।

किती बार मोहिं दूध पिश्रत भई यह अजहूँ है छोटी ।

तू जो कहति बल को बेनी ज्यों है व है लांबी मोटी ॥

काढ़त गुहृत न्हावावत ओछन नागिनि सी भवै लोटी ।

कांचो दूध-पिश्रावत पचि पचि देत न माखन रोटी ।’

माँ के साथ खेलना ‘मेरे आगे खेल करौ कुछ नैननि सुख दीजै मैया को । मैं मूंदो हरि आंखि तुम्हारि बालक रहे लुकाई । हरषि स्याम सब सखा बुलाए खेलौ आंखि मुंदाइ ।’, मिट्टी खाना ‘माटी लै मुख मेलि दई हरि तबहिं जसोदा जानी । साँटा लिए दौरि भुज पकरे श्याम लँगरई ठानी ।’ स्नान कराने पर रोना ‘जसुमति जबहिं कह्यो अन्हवावन रोइ गए हरि लोटत री । तेल उबटनौ आगे दधि धरि लालहि चोटत पोटत री ।’, (यसोदा भी बच्चे को पोटना खूब जानती थी) कभी बालक गोपाल का अपने आप खेलना ‘खेलत स्याम आपने रंग’, धूल से सना रहना ‘धूरि धूसर जटा जुटली हरि किए हर भेष’, तुतलाकर बोलना ‘बच्चों के साथ गली-गली जाना ‘विहरत विविध बालक संग, डगर डगर डोलत’, हारने पर भगड़ना, बच्चों द्वारा चिड़ाया जाना और रूढ़ होकर भागना ‘खेलन अब मेरा जात बलैया । जबहिं मोहिं देखत लरिकन संग तबहिं खिभत बलभैया ।’, माखन चोरी करना, बच्चों का एक साथ मिलकर भोजन करना और टहलना, गौचारण, चोरी पकड़े जाने पर उलाहना का उत्तर देते हुए कहना ‘मैया मैं नाहीं दधि खायो । ख्याल परे ये सखा सखे मिलि मेरे मुख लपटायों ।’, उखल में बधना आदि सभी सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक बाल-क्रियाएं समवेत रूप में एक पूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं जिसमें किंचित् मात्र भी कृत्रिमता नहीं, वरन् है अपूर्व स्वाभाविकता, सरसता, Universality (शाश्वतता), सजीवता (Liveliness) सौन्दर्य-पूर्णता (Perfection of beauty) तथा मनोमुग्धकारिता इसीलिए हिन्दी ही के नहीं वरन् विदेशी विद्वानों ने भी एक स्वर में सूर के शिशु-साहित्य की सराहना की है । इसी स्थल पर संत समीक्षक वियोगी हरि की उक्ति स्मरण हो आती है “सूर जैसा वात्सल्य स्नेह का भावुक चित्रकार । न भूतो न भविष्यन्ति-न हुआ है, न होगा । सूर ने यदि वात्सल्य को अपनाया, तो वात्सल्य ने भी सूर को अपना एकमात्र आश्रय स्थान मान लिया । सूर का दूसरा

विचार और अध्ययन]

नाम वात्सल्य है और वात्सल्य का दूसरा नाम सूर ।”+ निश्चय ही रवीन्द्र की तरह इनका बाल-वर्णन लौकिक मालूम पड़ता है जिससे वह शिशु मनुष्य से अधिक समीपता (Contiguity) का बोध कराता है, तथैव रस का संचरण स्वाभाविक गति में होता है। हम जानते हैं कि वही कला प्राणवान, श्रेष्ठ एवं सफल सिद्धि होती है जो वर्णित पात्रों, घटनाओं, समस्याओं, मनोदशाओं आदि और पाठकों में अभेद स्थापित करदे, जिससे पाठक बिना संकोच और व्यवधान के, साधारणीकरण के माध्यम से रस दशा में पहुँच सके। कृष्ण तो साधारण शिशु-सदृश बाल सुलभ व्यापार एवं चपलता करते दीख पड़ते हैं। मानव-पुत्र की तरह दही, दूध और माखन की चोरी भी करते हैं। इसीलिए डा० हजारि प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है—‘वल्लभाचार्य के संसर्ग में आने के पहले उनके (सूरके) अंदर विरक्ति की प्रधानता थी। पर वे बालक का हृदय लेकर पैदा हुए थे और अन्त तक बालक का हृदय लिए हुए ही संसार-यात्रा निबाह गए। वल्लभाचार्य के संसर्ग में आने पर उन्होंने लीला-गान करने की दीक्षा ली और सरल-हृदय बालक की भाँति इस नई चीज को पाकर पुरानी का मोह एकदम त्याग दिया……बाल-स्वभाव के वर्णन में सूरदास बेजोड़ समझे जाते हैं। वे स्वयं वयः प्राप्त बालक थे। बाल-स्वभाव-चित्रण में वे एक तरह का अपना अनुभव करते जान पड़ते हैं और ठीक उसी प्रकार मातृ-हृदय का मर्म भी समझ लेते हैं।’×

तुलसी ने भी गीतावली, कवितावली, रामायण के कई पदों में शिशु राम का वर्णन किया है। कवितावली में, आलोचकों की राय में, राम के एश्वर्य की प्रधानता दी गई है। गीतावली, जिसे मिश्र बन्धुओं ने कवितावली की तरह तीसरी शैली में अवतरित मानकर, शैलीगत विशिष्टताओं पर ध्यान दिया है, सम्भवतः सूर-साहित्य से प्रभावित कृति है, क्योंकि उसके बहुत से पद सूर के पद से पूर्णतया मिलते हैं। जिस सम्बन्ध में डा० राम कुमार वर्मा का अनुमान है—‘तुलसीदासने गीतावली में राम की कथा पदों में लिखी है। संभव है, कृष्ण की कथा का पदरूप अत्यधिक प्रचार होते देख कर तुलसीदास ने राम की कथा भी पदरूप में लिखी हो अथवा साहित्य के क्षेत्र में सम्भवतः सूरदास के

+ वियोगी हरि—प्रेम-योग

× डा० ६० प्र० द्विवेदी—हिन्दी-साहित्य की भूमिका

[तोन महा कवियों का शिशु-साहित्य]

‘सूरसागर’ ने तुलसीदास का ध्यान इस ओर आकर्षित किया हो ।’ + वर्मा जी अपने उक्त इतिहास में कई पदों को उद्धृत कर साम्य दिखाकर प्रभाव की ओर इंगित किया है । सूर तुलसी के पूर्व प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे, अतः अनुमान ठीक ही लगता है । कई जगहों पर ऐसा मालूम पड़ता है कि मात्र नकल है, केवल एकाध शब्द परिवर्तित कर दिए गए हैं । फिर भी हमें उनके शिशु-साहित्य पर सांगोपांग दृष्टि डालनी चाहिए तभी उचित मूल्यांकन तथा न्याय सम्भव है ।

चुटका बजावती नचावती कौसह्या माता,
बालकेलि गावतिम द्वावती सुप्रेम-भर ।
किलकि किलकि हँसैं, द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं,
तुलसी के मन वसैं तोतरे वचन बर ॥—गीतावली

निःसन्देह ये पंक्तियाँ बहुत ही सजीव और सुन्दर हैं । बालक राम का आंगन में घुटनों के बल दौड़ना ‘आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए’, गिरना और पुनः उठकर चलना ‘परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि । भुक्नि, भौकनि, छौह सो किलकनि, नटनि, हठि लरनि । तोतर बोलनि, बिलोकनि, मोहनी मनहरनि ।’, ठुमुक-ठुमुक कर चलना ‘ठुमुक ठुमुक पग धरनि, नटनि, लरखरनि सुहाई । भजनि, मिलनि, रुठनि, तूठनि, किलकनि, अवलोकनि, बोलनि बरनि न जाई ।’, सिर पर हाथ रखते ही शिशु राम का किलकना ‘माये हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे ।’, माता का अंजन-उबटन लगाना ‘चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे, चिर रुचि तिलक गोरोचनको कियो है’, अपने बच्चों के प्रति यह उत्कंठा जागना ‘ह्वै हौ लाल कबहिं बड़े बलि मैया । छगन-मगन आँगना खेलिहौ मिलि, ठुमुक ठुमुक कब धेहौ । कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि ‘माँ’ मोहि बुलैहौ ।’ प्रातःकाल बालक के रोने और दूध नहीं पान करने पर सभी को चिन्तित होना ‘आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके । रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने भुलावत हूँ, रोवत राम मेरो सो सोच सबही के ।’ आदि निश्चय ही सुन्दर चित्र हैं । परन्तु तुलसी का यह वर्णन बाह्य है, कायिक है, उतनी अन्तर्सूक्ष्मता नहीं जो सूर और रवीन्द्र में है । अधिक पदों में प्रायः केवल राम के शारीरिक-सौन्दर्य का ही वर्णन है । राम शील और मर्यादा के बन्धन में ऐसे आवद्ध हैं कि आदर्शानुकूल प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य—जैसे

+ डा० रामकुमार वर्मा—हि० सा० का आ० ई०

विचार और अध्ययन]

माखन चोरी—चोरी पकड़े जाने पर बहाना करना आदि—कदापि नहीं करते। केवल दो-तीन पदों में ही वे (राम) नगरवासियों के बच्चों के साथ खेलते 'बिहरत अवध-बीथिन राम । संग अनुज अनेक सिसु, नव-नील-नीरद-स्याम ।' और 'खेलत चोहट घाट बांथी बाटिकनि प्रभु सिव सुप्रेम-मानस-मरालु ।' तथा गोली, लट्ठू से मनमाद करते 'खेलत अवध-खोरि, गोली भौराचक डोरि' तथा चौगन एवं कन्दुक क्रीड़ा के अवसर पर उपस्थित देखे जाते हैं। परन्तु यह स्थल भी व्यापक मनोवैज्ञानिक, मनोभूमि तथा अनुभूति का चित्रक नहीं है, तथैव प्राणवत्ता का अभाव दीख पड़ता है।

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हौं सोच-विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिकसे ।
'तुलसी' मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन-जातक से ।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ॥१॥
पग नृपुर औ पहुँचा करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये ।
नवनील कलेवर पीत भँगा भलकै, पुलकै नृप गोद लिये ।
अरविन्द सो आनन, रूपमरन्द अनन्दित लोचन-भृंग पिये ।

मन में न बस्यो अस बालक जौ 'तुलसी' जग में फल कौन जिये । २॥ X
सूर के बालक की तरह तुलसी के राम भी चन्द्र को लेना चाहते हैं परन्तु तुलसी के उक्त वर्णनों में वह सर्जीवता और वेग (impulsive) नहीं है। मात्र वर्णनात्मकता और बाह्य-पक्ष प्रबल है, मनोवैज्ञानिक परिवेक्षण (Psychological observation) नहीं। सूरम पकड़ नहीं। सूर के जमलार्जुन बध, बकासुर वध आदि कुछ प्रसंग हैं जिसमें कृष्ण को देवत्व की संज्ञा मिलती है, परन्तु इस क्षेत्र में तुलसी बहुत सावधान है। अतः वे राम के बाह्य सौन्दर्य पर ही सीमित रह जाते हैं।

रवीन्द्र के बालक का मास्टर की नकल करते हुए बिल्ली को पढ़ाना कितना स्वाभाविक है—'आमी आज कानाई मास्टर, पड़ो मोर बेराल छानाटी, आमी ओके मारिने मा बेंत मिछि मिछि बसी नियो काठी ।, रोज रोज देरी करे आसे, पड़ाते देय ना ओ तो मन, डान पा तुलिये तुले हाई, जतो आमी बोली सुन् सुन् ।' वह (लल्ला) मास्टर से सुनता है कि दिनभर नहीं खेलना चाहिए; पढ़ना भी चाहिए। अतः वह बिल्ली से उप-देश करता है 'दिन-रात खेला खेला खेला लेखाय, पड़ाय भारी हेला । आमी

X तुलसीदास—कविताबली

बोली च छ ज झ ञ, ओ केवल बोले म्यों म्यों ।’ लल्ला दिन में जो शिक्षक से सुनाता है उसी का उस पर प्रभाव है और अपने मास्टर के समान बिल्ली को चोरी से विमुख होने का शिक्षा देता है ‘प्रथम भागेर पाता खुले आमी ओरे बोभाई मा कतो चुरा करे खासने कखनो, भालो होस गोपालेर मता ! जतो बोली सब हय भिछे कथा यदि एकटी ओ सुने ! माछ यदि देखछे कोथाब किछुई थाके ना आर मने ।’ देखिए कितना स्वाभाविक ढंग से बालक कन्हाई मास्टर’ बना हुआ बोलता है ।

“आमि ओरे बोली बार बार पड़ार समय तुमी पड़ो—

तार परे छुटी होये गले खेलार समय खेला कोरो !

भालो मानुषेर मतो थाके आड़े आड़े चाय मुख पाने ,

एमनी से भान करे, जेनो जा बोली बुभेछे तार माने !

एकटू सुयोग बुभे जेई कोथा जाय आर देखा नेइ !”

बालक पिता को लिखते देख जिज्ञासावश माँ से पूछता है—

“बाबा नाकी बइ लेखे सब निजे ! किच्छुइ बोभा जायना लिखेन किजे !

से दिन पड़े सुनाच्छितेन तोरे बुभेछित्ता बल मां सत्यि कोरे !”

उसे विश्वास है कि माँ भी नहीं समझती होगी क्योंकि वह नहीं समझ रहा है । अतः समालोचक की तरह, स्वाभाविक ढंग से कह बैठता है ‘एमन लेखाय तबे बल दिखा की हवे ? वह अपनी राय प्रकट करता हुआ कहता है—

“तोर मुखे मां जेमन कथा सुनी, तेमन केनो लेखेन नाको उनी ?

ठाकुरमा की बाबा के कखनो राजार कथा सुनायनी को कोनो ?”

यदि कुमारदास कृन जानकी-हरण की निम्न पाँक्तियों की (शिशु-वर्णन) विद्वानों ने * बड़ा प्रशंसा की है—

न स राम इह क्व यात इत्यनुयुक्तो वनिनाभिरग्रतः ।

निजहस्तपुटावृताननो, विदधेऽलीकानलानमर्भकः ॥

तो निश्चय ही रवान्द्र नाथ का यह चित्रण उससे भी अधिक प्राणवान और जीवंत है । औरवे हमारे लिए अधिक प्रशंसाके पात्र हैं आगे वह (लल्ला) अपनी माँ पर गुस्सा प्रकट करता हुआ कहता है कि जब मैं बाबूजी का खाता खींच कर ‘क ख ग’ लिखता हूँ तो तू भिगड़ती है और जब बाबूजी लिखते हैं तो तू कुछ नहीं बोलती —

“आमी जखन बाबार खाता टेने, लिखी बोसे दोआत कलम एने—

बिचार और अध्ययन]

का कमजोर पक्ष है जिस पर पर्दा नहीं डाला जा सकता । रवीन्द्रनाथ को तुलसी की तरह कोई संकट नहीं । लल्ला मनुष्य है, अतः वे सफलता पूर्वक उसके मनोवेगों को चित्रित कर सके हैं । परन्तु, एक बात स्मरण रहे कि सूर में भी, तुलसी की तरह, जहाँ बाह्य-भीन्दर्य प्रबल हो उठा है, उसका स्वाभाविक कारण है भक्ति-भावना । और सूर के कृष्ण भी राम सदृश लीला पुरुष हैं । यह सत्य है कि सूर का बाल-वर्णन वैसे पदों के कारण अलभ्य और प्रशंसनीय नहीं अपितु अन्य सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक, प्राणपूर्ण एवं जीवत कलात्मक चित्रों के अभिव्यंजन के कारण है । रवीन्द्र नाथ में रूप-सौन्दर्य की महत्ता नहीं, प्रत्युत् बाल-सुलभ प्राकृतिक मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रधानता है । वे सूर का तरह, बच्चों के स्वाभाविक जीवन-गत व्यापार, जिज्ञासा और कार्य-कलापों के चित्रण में तन्मयता और भुकाव प्रदर्शित करते हैं । ऐसी अवस्था में सूर और रवीन्द्र का शिशु परक साहित्य तुलसी से अधिक भाव प्रवण, प्रभावपूर्ण और सफल है ।

(ख) एक और बड़ी विशेषता है जिससे सूर और रवीन्द्र का साहित्य अधिक सरस और आकर्षक हो गया है, वह कारण है नाटकीयता, अभिनीयता तुलसी में इसका सर्वथा अभाव है । नाटकीयता वार्तालाप से वेग और तेज हो जाता है, रोचकता और सौन्दर्य की अभिवृद्धि हो जाती है, जिससे पाठक प्रभावान्छुन हो जाते हैं । 'मैया मोहि दाऊ बहुत खिभायो और 'दादा बले 'पाबा काथाय अत बड़ फाँद ?' में नाटकीयता प्रचुर एवं स्पष्ट है ।

(ग) सूर, तुलसी, रवीन्द्र तीनों का शिशु-साहित्य पारिवारिक है परन्तु सूर का शिशु-साहित्य सामाजिक भी यथेष्ट है । उनका शिशु केवल परिवार की सामा में ही हास-विलास नहीं करता प्रत्युत् गोप-समाज के साथ गोचरण करता है, साथ चोरी करता है, भोजन करता है आदि । तुलसी ने गीतावला में पट (Canvas) विस्तृत करना चाहा है परन्तु आगे नहीं बढ़ सका । देवत्व और शीत-मर्यादा का स्थापना के निमित्त उनकी कला आगे बढ़ने में संकोच करता है । इसीलिए भावपक्ष में सूर और रवीन्द्र तुलसी से नःसन्देह आगे दाख पड़ते हैं ।

(घ) संगीत की दृष्टि से तीनों महत्वपूर्ण हैं । सूर-तुलसी ने तो राग रागिनियों पर ही पदों को बांध दिया है और रवीन्द्र में भी गीतात्मकता यथेष्ट है । रवीन्द्र ने Local colour देने के लिए इसी प्रकार की स्वाभाविक-भाषा का

[तीन महाकवियों का शिशु-साहित्य]

उपयोग किया। सूर ने भी इसी तथ्यानुरूप गोप-परिवार में प्राप्त दूध-दही-मकखन और अन्य वस्तुओं का उल्लेख बड़ी तन्मयता से किया। आज भी हम तीनों के गीत प्रायः रेडियो द्वारा प्रसारित होते सुनते हैं।

(६) तुलसी और सूर भक्तिकालीन कवि थे और रवीन्द्र आधुनिक काल के। सूर और तुलसी ने तत्पुगीन सर्वमान्य सर्वसम्मत काव्य की सर्व-प्रिय भाषा, ब्रजभाषा में शिशु-साहित्य प्रस्तुत किया तो रवीन्द्रनाथ ने बंगला में। रवीन्द्रनाथ का क्षेत्र भी बंगाल था—सूर और तुलसी की तरह ब्रज और उत्तर-भारत नहीं। फिर भी इतना सत्य है कि भाषा की दृष्टि से तीनों बेजोड़ हैं। तीनों ही सफल हैं। तीनों का भाषा पर अपूर्व अधिकार है और जब वे बाल-वर्णन करते हैं तो भाषा में रुकावट पैदा नहीं होता वरन् भाषागत-सौन्दर्य और सरसता निर्बाध गति से स्वयं अनवरत प्रवाहित होती दीख पड़ती है। यही पर यह भी स्मरण रखें कि तुलसी की भाषा अनेक शास्त्रीय और संस्कृत-गर्भित है। इनकी (सूरकी) भाषा ऐसी ललित और श्रुति मधुर है जैसे इनके पीछेवाले कवियों तक में बहुत कम पाई जाती है। इनकी कविता में मिश्रित वर्ण बहुत कम आते हैं। उसके माधुर्य और प्रसाद प्रधान गुण हैं। आज की मात्रा इनकी कविता में कुछ कम है।' X

शब्द-चयन में तीनों चतुर और दक्ष हैं। रवीन्द्र ने बच्चों की बोली के शब्दों का भी उपयोग किया है, जिसकी चर्चा मैं ऊपर ही कर चुका हूँ। बंगला और ब्रजभाषा दोनों ही मीठी भाषा है फिर महाकवियों के हाथ में आकर सरसता और मीठापन का क्या कहना।

इधर कुछ तथाकथित आलोचकों ने यह सिद्ध करना चाहा है कि रवीन्द्र नाथ की शिशु-परक-कविताओं के सम्मुख तुलसी और सूर भी फीके पड़ते हैं। यह नितान्त सत्य है कि रवीन्द्र नाथ का बाल-वर्णन भी साहित्य-भंडार का अपूर्व अक्षयनिधि है, परन्तु सूर को उनसे नीचा कहना अपनी अनभिज्ञता का परिचय देना होगा, कवि के साथ अन्याय करना होगा। हमें उस कवि के युग में प्रवेश कर उससे अभिन्नता स्थापित कर, उन चित्रों को देखना होगा। एक उदार और सहिष्णु व्यक्ति बन उनकी कलापर दृष्टिपात करना होगा। मेरी तो धारणा है कि जो असहिष्णु हैं, अहमवादी और काव्यालोकन में अक्षम हैं उन्हें आलोचना के क्षेत्र में नहीं जाना चाहिए।

X मिश्र बन्धु—महात्मा सूरदास

विचार और अध्ययन]

क्योंकि इसी कारण से एक तथाकथित आलोचक ने दिनकर के साथ अन्याय किया है। मैं तो समझता हूँ कि सूर और रवीन्द्र दोनों के शिशु-साहित्य का भारतीय-साहित्य में ही केवल अमर पद प्राप्त नहीं है। वरन् विश्व-शिशु-साहित्य में शीर्षस्थान है। एक दृष्टि से देखा जाय तो जब सूर कृष्ण में देवत्व की स्थापना करने लगते हैं तो रवीन्द्र आगे बढ़ जाते हैं और जब रवीन्द्र के शिशु की जिज्ञासा में रहस्य-भावना का प्रादुर्भाव होता है तो सूर आगे बढ़ जाते हैं।

कुछ बुद्धिजीवी आलोचकों को रवीन्द्र और सूर के तुलनात्मक अध्ययन पर आपत्ति होगी क्योंकि भाषा, दृष्टिचेतना, युग, परिवेश आदि अनेक आधारों से दोनों में मझान् अन्तर है। यों देखा जाय तो एक युग के कलाकारों में भी परस्पर विचार-दर्शन, काव्यगत-सौन्दर्य-चेतना का उत्स साम्यहीन होख पड़ता है। एक ही कपौटी का निर्धारण सब दिशाओं में अनुपयुक्त सिद्ध होता है अतः इस दृष्टि से तुलना का प्रश्न ही प्रश्नपूर्ण है।

परन्तु यह भी सत्य है कि कला के भावपक्ष में अन्तर्हित एक तानता, एक सुक्ष्म साम्य संवेदा रहता है जिसे शीर्षफल आनन्द या अन्य रूप में हम ग्रहण या स्वीकार करें। यदि आलोचक की दृष्टि समा, वादवद्ध या अनपेक्षित संतुलन-हीनता का शिकार नहीं है, निष्पक्षता और उदारचेतना से आप्लावित है तो तुलनात्मक अध्ययन बुरा कदापि नहीं माना जाएगा और सत्यान्वेषण का निश्चित रूपेण साहित्य के ठोस धरातल पर महत्व स्वाकृत होगा। सूर, तुलसी और रवीन्द्र के शिशु-परक साहित्य का इसी दृष्टि से मूल्यांकन अनौचित्य का सीमा में प्रवेश नहीं करेगा, ऐसा मेरा विनोत विचार है।

रवीन्द्र, सूर, तुलसी तीनों भारतीय साहित्य के गौरव हैं, सूर्य है, चन्द्र है, धवल-स्निग्ध विराट नक्षत्र हैं, जिनमें हमारी आस्था है।

१९५३ ई०

—:✱:—

मीरा की भक्ति-भावना और उसकी प्रेरक-शक्तियाँ

मीरा प्रेम का साक्षात् अवतार थी। उसकी साधना 'माधुर्य' भाव की थी क्योंकि उमे विश्वास था कि प्रभु प्रेमाधीन हैं 'नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचीलणी, जूठे फल लीन्हें राम, प्रेम की प्रतीत जान' और 'मीरा के प्रभु गहिर गँभीरा, सदा रहोजी धीरा। आधीरात प्रभु दरसण देहैं, प्रेमनदी के तीरा ॥' नारद की दाहुई प्रेम की परिभाषा भी इस प्रकार की है — 'अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूपम्।' और 'गुण रहितं कामना रहितं प्रतिक्षण-वर्द्धमान विच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥'

महाकवि भवभूति के प्रेम-चित्रण पर ध्यान केन्द्रित करें—

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थामु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरया यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यस्त्वेहसारे स्थितं
भद्रं प्रेम सुमानुषस्य कथमप्येक हि तत्प्राप्येत ॥

Tappei महोदय ने प्रेम की व्याख्या बड़े ही मार्मिकदृग् से प्रस्तुत की है—

Love ! what a volume in a word !
An ocean in a tear !
A seventh heaven in a glance !
A whirl wind in a Sigh !
The lightning in a touch !
A millennium in a moment !
What Concentrated joy or woe
in blessed or blighted Love !

हेनरीवान डाइक की प्रेम-व्याख्या सुने—

Love is not getting, but giving; not a wild dream of pleasure and a madness of desire—Oh, no, love is not that.

आलवार कवियत्री गोदा की तरह वह स्पष्ट कहा करती थी मेरे तो गिरधर गोपाल, दूमरो न कोई। जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।' क्योंकि उसे ज्ञात था मात पिता श्री कुटुम्ब कबीलो, सब मतलब के गरजी।' विद्यापति ने भी जर्जरावस्था में इसी तथ्य का अनुभव किया था 'तातल सैकत

विचार और अभ्ययन]

बारिबिन्दु सम सुतमित रमनिसमाजे । तोहे बिसारिमन तोहे समरपिनु अब
मभुइव कोन काजे ।'

सचमुच, मीरां और श्याम जैसा अन्योनाश्रय सम्बन्ध भक्ति-साहित्य में
अलभ्य है । मीरां 'प्रेम का प्याला पीकर' केवल मात्र यही आकांक्षा रखती
है 'मैं तो गिरिधर के आगे नाचूँगी ।' प्रियतम श्याम का प्यास ने उन्मत्ता-
वस्था कर दा है, उसे 'पीया विनि रख्योइ न जाई ।' वह स्पष्ट शब्दों में कहती
है 'रमैया विन नींद न आवै ।' और 'लगी मोहि राम खुमारी हो ।' उसे
नींद भी नहीं आती—

“सखी मेरी नींद नसानी हो ।

पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैण बिहानी हो ॥

सब सखियन मिली साख दई, मन एक न मानी हो ।

बिनि देख्याँ कल नाहिं पड़त, जिय ऐसी ठानी हो ।

अंगिअंगि व्याकुल भई, मुखि पिय पिय बानी हो ।

अन्तर वेदन विरह की, वह पीड़ न जानी हो ।

ज्यूँ चातक घन कूँ रटै, मछुरी जिमि पानी हो ।

मीरां व्याकुल बिरहणी, सुध बुध विसरानी हो ॥

वह अपने प्रियतम की पुकार, पपीहे को करते सुनना नहीं चाहती,
क्योंकि प्रियतम उसका है; प्रियतम और अपने बीच दूसरों को आने नहीं देना
चाहती—

“पपइया रे पिव की बाणि न बोले ।

सुणि पावेली बिरहणी रे, थारो रालैली आँख मरोड़ ।

चाँच कटाँऊ पपइया रे, ऊपरि कालर लूण

पिव मेरा मैं पीव की रे, तू पिव कहे सकूण ॥”

प्रियतम के दर्शन के अभाव में आँखें उसकी दुखने लगी हैं—‘दरस
बिन दूखण लागै नैन । जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे, कबहुँ न पायो चैन ।’ सच-
मुच, विरह में उसकी बड़ी मार्मिक अवस्था है । वह प्रियतम को निमंत्रण देती
है—‘गँगन मंडल पै सेभ पिया की’ और ‘त्रिकुटी महल में बना है भरोखा,
तहाँ से भाँकी लगाऊँ री । सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज
बिछाऊँ री । मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, बार बार बलि जाऊँ, री ॥’ जब
वह अपने प्रियतम को पत्र लिखने बैठती है तो उसकी विचित्र अवस्था हो
जाती है—

[मीरा की भक्ति-भावना और उसकी प्रेरक-शक्तियाँ]

‘पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिखिही न जाइ ।

कलम धरत मेरो कर कम्पत, हिरदो रहो धरिई ।

बात कहूँ मोहि बात न आवै, नैन रहे भरिई ।’

और उसी श्याम के अभाव में पावस - ऋतु उसके लिए, गोपियों की तरह, अत्यधिक कष्टप्रद हो जाती है —

‘मतवारो बादर आए रे, हरि को सनेसो कवहुँ न लाए रे ।

दादर मोर पड़या बौलै, कोयल सबद सुणाए रे ।

(इक) कारी अधियारी विजरी चमकै, विरहणि अति डरपाए रे ।

(इक) गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति भड़ लाए रे ।

(इक) कारी नाग विरह अति जारी, मीरां मन हरि भाए रे ।’

वह प्रेम की पीर को ईसाइ टेरेसा की तरह निरंतर सहती रहती है । वह अपने प्रियतम के प्रेम की बात को किसी भी भय से छिपाना नहीं चाहती ‘मैं अरण्ये सैया सँग साँची । अब काहे की लाज सजनी, परगट हवै नाची ।’ गिरिधर के संग नाचने में उसे जरा भी संकोच या भय नहीं—

‘पग घुँघरू बोंध मीरा नाची, रे ।

मैं तो मेरे नारायण की, आपहि होगइ दासी, रे ।

लोग कहैं मीरां भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी, रे ।

विष का प्याला राणाजी भेज्या पीवत मीरां हाँसी, रे ।

मीरां के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अबिनासी रे ।’

उपर्युक्त उद्धृत पदों में चित्रित एवं व्यंजित अवस्था से प्रत्येक पाठक को यह भली-भाँति विदित हो गया होगा कि भक्ति-काल की मीरा की भक्ति कृष्ण-शाखान्तर्गत है और सगुण कोटि की । उसमें ‘शून्य’ आदि की भी चर्चा मिलती है जिससे निर्गुण का भी प्रभाव समझा जा सकता है । इस तथ्य पर पूर्णतया प्रकाश हम आगे डालेंगे । मीरा की कृष्ण सुन्दर हैं, मूर्त हैं, सगुण हैं—

‘हमरो प्रणाम बाँके विहारी को ।

मोर मुकट माथे तिलक बिराजै, कुंडल अलकारी को ।’

* * * *

‘मोहनी मूरति सांवरी सूरति, नैणा बने बिसाल ।

अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंती माल ।

छुद्र घटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल ।

मीरा की प्रभु संतन मुखदाई, भक्त बल्लल गोपाल ।’

विचार और अध्ययन]

सूर और बिहारी ने भी कृष्ण को कुछ इसी रूप में चित्रित किया है । परन्तु, मीरां ने कृष्ण को, अपने आराध्य को पति-भाव से ग्रहण किया है और नारी होने के कारण, प्रतारित और दुखिनीबाला होने के कारण, अभावग्रस्त नारी होने के कारण, उपासना में भावना की तीव्रता है, उसकी निश्छल वाणी में आत्मा की झंकार है, विरहावस्था में अनुभूति का तारतम्य एवं पीड़ा की मनोवैज्ञानिक कसमसाहट है, मिलन की आकंठ-प्यास की सचाई है, कहीं पर स्वकीया का पति-मिलन की आतुरता है तो कहीं परकीया की चिन्ता, परन्तु संयम-सधित स्वर । नरसिंह की तरह संयम की उपेक्षा नहीं । मीरां में कहीं संयोग— सुख है तो कहीं विरह का अथाह सागर । 'पर वह आध्यात्मिक हैं, सांसारिक नहीं ।'*

भक्तिकाल में जायसी का एकेश्वरवाद, कबीर का निर्गुणवाद, सूर की कृष्ण-भक्ति तथा तुलसी का मर्यादित सगुणवाद समवेतरूप से एक व्यापक भक्ति-भावना एवं काल की स्थापना कर रहे थे । उसी भक्ति काल की मध्याह्न वेला में मीरां की तन्मयी साधना-युक्त प्रेमपूरित उपासना से भक्ति की मंदाकिनी और ऊर्जस्वी बनी रही । आवेष्टन, परिवेश, संस्कार, प्रियजनों की मृत्यु और उपेक्षा एवं वैधव्यता ने उसे (मीरां को) स्वभावतः एकमात्र भक्ति की ओर आकृष्ट किया । बाल्यकाल में कृष्ण की मूर्ति के लिये अड़ना बालसुलभ प्रकृति ही हो, परन्तु वैधव्यतामें एवं उपेक्षित जीवन में एकमात्र यही मार्ग था उसके लिये । वह झूठे जगत से नाता-सम्बन्ध तोड़कर शाश्वत, आनन्दयुक्त भूमा की उपासना के निमित्त, संगीत के सहयोग से, कंटका कीर्ण-पथ पर अग्रसर हो गई । उसकी उपासना में निम्न तत्वों का सन्निवेश है—(क) प्रेम का प्रावल्य, (ख) वाणी की निश्छलता, (ग) मिलन की तीव्रकांक्षा, (घ) यत्र-तत्र रहस्यवादी, निर्गुणवादी प्रवृत्ति, (ङ) वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति, (च) सामाजिकता से अधिक वैयक्तिक, एकान्तिक साधना, (छ) पत्नीरूप से उपासना, (ज) कबीर की तरह निर्भीक उपासना, (झ) भक्ति-भावना में गहराई, (ञ) भक्तिपरक गीतों में कलात्मकता का अंश कम प्रत्युत आत्मानुभूति की सचाई जैसे 'हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी होई, दरद न जाणौ मेरो कोइ ।' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'मरम का पीर न जाने कोय' और कबीर की 'कै सो जाने जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहारी' तथा कवि ठाकुर की 'लगी अन्तर मैं कै बाहिर को, बिन जाहिर कोउ न मानतु है' पंक्तियों में कुछ मीरां की तरह ही वेदना का आधिक्य परिलक्षित होता है, (ट) अन्तः-शुद्धि पर

* डा० रामकुमार वर्मा—हि० सा० का आ० इ०

[मीरा की भक्ति-भावना और उसकी प्रेरक-शक्तियाँ]

ध्यान (ठ) माधुर्य-भावना की उपासना, जिसे देखकर डा० रामकुमार वर्मा मीरा को चैतन्य महाप्रभु से प्रभावित समझते हैं ।

अब हम उसकी भक्ति की प्रेरक शक्तियों पर विचार करें । जीवन के प्रत्येक तत्व कार्य-कारण-मृत्खला में बंधे हुए हैं । पृष्ठभूमि का मनोवैज्ञानिक महत्व है जिस पर भविष्य की क्रिया-प्रक्रिया, अविच्छिन्न रूप से, विनिर्मुक्त नहीं, अबाध गति से होती रहती है । (१) मीरा ने बाल्यकाल से सगुण-भक्ति का संस्कार ग्रहण किया था । संस्कार किस प्रकार समुचित अवसर प्राप्त कर प्रबल रूप में कार्य करता है यह प्रत्येक व्यक्ति निश्चित रूप से जानता है ।

Thorndike, Holzinger, Galtan, Dugdell, Stawbrook, Karl Pierson ने विभिन्न परिवारों का व्यावहारिक अध्ययन कर यही निष्कर्ष निकाला कि संस्कार एवं वंशानुक्रम (Heredity) का प्रभाव बड़ा व्यापक होता है ।

किंवदंतियाँ हैं (क) एक समय एक साधु जो उसके पिता के यहाँ आकर ठहरा, तो बाल्यावस्था में ही, मीरा साधु के पास गिरिधर गोपाल की मूर्ति देखकर, लेने के लिए मचलने लगी । पहले तो मूर्ति देने से इन्कार कर साधु चला गया, परन्तु यह स्वप्न देखकर 'मूर्ति मीरा का देने में ही उसका कल्याण है' वह मूर्ति मीरा को दे गया और मीरा प्रसन्नचित्त उसे अपने पास रखने लगी । ख, यह भी कहा जाता है कि पड़ोस में किसी के यहाँ शादी होते देख मीरा ने माँ से पूछा कि 'मेरा वर कौन है ?' और उसके उत्तर में माँ ने मूर्ति की ओर इंगित कर दिया । इसी प्रकार की अनेक कहावतें हैं जिससे प्रकाश पड़ता है कि मीरा का कृष्ण के प्रति बाल्यकाल से ही झुकाव था । (ग) साथ ही पितामह राव दूदाजी की देखरेख में रहने से भी, उनके धार्मिक संस्कार का मीरा पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । हरिविलास जी शारदा और गौरी शंकर हीराचंद ओझा इसी मत से सहमत हैं कि दूदा जी उसके पितामह थे, जो वैष्णव थे । (घ) यह भी कहा जाता है कि शादी के पश्चात् मीरा ससुराल में अपने साथ गिरिधर लाल की मूर्ति लेती गई थी जिसे पति की जीवितावस्था से ही विधिवत् पूजती थी । वैधव्य होने पर वह लौकिक-बन्धनों को विस्मरण कर उनका ओर दृढ़ता से अनुरक्त हो गई । इस प्रकार की बहुत सी किंवदंतियाँ हैं जिन पर विस्तार पूर्वक विचारना सम्भव नहीं है ।

आज यह प्रामाणिक सत्य है कि किंवदंतियों की नींव में सत्य-शिला का भी कुछ योग-दान रहता है । किंवदंतियाँ, लोक-गीत तथा लोक-कथा का

विचार और अध्ययन]

महत् स्वीकृत हो चुका है। अतः वे उपेक्षनीय नहीं हैं। इसीलिए मैंने पाठकों के सम्मुख मीरा-सम्बन्धी कुछ अति प्रचलित किंवदंतियों को रखा है। जनश्रुतियों तथा इस प्रकार के अन्य तत्वों को पूर्णतया सत्य स्वीकार करना भी भ्रान्ति मूलक धारण को प्रश्रय देना है।

(२) परम्परा के विकास रूप में (डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार) या दलित हिन्दू-राष्ट्र ने त्राण के निमित्त आश्रय स्वरूप भगवान् को ढूढ़ लिया (पं० रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार)। मीरा की भक्ति-भावना का स्वाभाविक विकास इसी दिशा का सूचक है। चतुर्दिक परिव्याप्त भक्ति-भावना का प्रभाव युग की जागरूक चेतना पर पड़ना स्वाभाविक ही था। मीरा यदि दूसरे युग में (रीतिकाल या अन्य काल में) होती तो सम्भवतः उसकी भक्ति-पद्धति एवं भावना का अन्तस्त्रोत कुछ भिन्न होता, रूप कुछ विभिन्न होता। आवेष्टन का प्रभाव मीरा के दुखी-दिल पर पड़ना भी स्वाभाविक ही था।

(३) जीवन की कष्ट एवं दारुण परिस्थितियों में मीरा का एकमात्र भगवान् का ओर आकृष्ट होना नैसर्गिक सत्य था। वैधव्यता की दारुणावस्था में नारीयोचित यही था।

(४) यह भी मनोवैज्ञानिक सत्य है कि दबाव से मानवीय चेतना अधिक विद्रोह कर उठती है और यही कारण है कि राणा (पति) के और उसके परिवारवालों के प्रबल विरोध से वह भक्ति-भावना से और निकट होती गई। राणा के अत्याचार और क्रूर व्यवहारों की तो मीरा ने स्वयं कई स्थलों पर चर्चा की है—‘साँप पिटाओं राणाजी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गल डार।’ और ‘विष का प्यालो राणा जी मेल्यो, द्यो मेड़तणी ने पाय। कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविंद रा गाय।’ परन्तु, यहीं पर मैं यह भी अवश्य कहूँगा कि बारम्बार ऐसे प्रसंगों को उठाना, जो मेरे विचार से वस्तुतः आत्मदलाषा ही है, हमारे हृदय को शंकित कर देता है। मुझे तो मालूम पड़ता है कि एक भक्त-हृदय-नारी बारम्बार ऐसे विषय की चर्चा नहीं करता। इसमें इसी सत्यांश का बोध होता है कि इस प्रकार के कुछ पद किसी अन्य रचित हैं, जो कालान्तर से मीरा के नाम पर प्रचलित हो गए हैं या कोई दूसरी भी मीरा थी।

महावीर सिंह गहलौत ने तो मीरा-समकालीन एक अन्य मीरा की चर्चा की है। उनका विश्वास है कि उस काल राव मालदेव की पांचवी पुत्री का नाम भी

[मीरां की भक्ति-भावना और उसकी प्रेरक-शक्तियां]

वही था । परन्तु वैसे पद, मालदेव की पुत्री मीरां के ही हों, यह निश्चय नहीं । सम्भव है, इन दोनों के अतिरिक्त और भी कोई दूसरी मीरां की कृति हो या क्षेपकमात्र हों । परन्तु, उक्त घटना (विष-प्रसंग) भ्रामक सिद्ध नहीं होती क्योंकि स्व० मुं० देवी प्रसाद मुंसिफ ने लिखा है—“मीरांबाई को राणा विक्रमाजित के दीवान कौम महाजन बीजवर्गी ने जहर दिया था .. मीरां-बाई का आप बीजवर्गी कौम पर अब तक लगा हुआ है और वे मानते हैं कि उस आप से हमारी औलाद में तरकी नहीं होती ।”*

(५) उस काल ज्ञानयोग की धारा मनशुद्धि एवं चित्तवृत्तियों के निरोध द्वारा परमत्व का ज्ञानानुभव करती, प्रेमानुबंध-धारा नैसर्गिक आत्मीयता का भाव हृदयंगम करती परमशक्ति के साथ और भक्ति परमात्मा से सन्निध्य ग्रहण करने के लिए शुद्ध प्रेम आवश्यक समझती । निर्गुण रूप के यदाकदा दिग्दर्शन से सम्भवतः आवेष्टनगत भाव-धाराओं का ही प्रभाव प्रतीत होता है । संस्कार आदि की सम्मिलित दृष्टि से मीरां की भक्ति-पद्धति स्वाभाविक थी । क्योंकि वह एक भावविह्वला, अनुभूति प्रवण नारी थी । नारी के लिए यही मार्ग अधिक सहज और आकर्षक था, ऐसा मैं मानता हूँ । ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि मीरां के गुरु रैदास थे, जो कबीर पंथी थे, निर्गुण उपासक सत थे क्योंकि कई पदों में उनकी चर्चा मिलती है गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्हीं ग्यान की गुटकी' और 'मीरां ने गोविंद मिल्या जा, गुरु मिलिया रैदास ।' परन्तु, इतिहास इसके पक्ष में नहीं बैठता । मीरां ने संतों का तरह 'सुन्न महल' आदि की चर्चा की है कबीर आदि ने भी कहा है 'सुन्न महल में दियरावार के आसन से मत डोल रे ।' मीरां ने भी संतों की तरह गुरु की महत्ता स्वीकार का है—'सतगुरु भेद बताइया, खोली भरम किंवार हो ।' कुछ लोगों ने अनुमान किया है कि मीरां ने पुष्टि मार्ग अपनाया था । कुछ लोगों ने उसे जीव गोस्वामी का शिष्य स्वीकार का है, और वियोगी हरि का विश्वास है कि मीरां के 'सिद्ध गुरु जीव गोस्वामी ही थे ।' + परन्तु, अन्तर्साक्ष्य और वहिर्साक्ष्य प्रमाणों से ये सत्य नहीं सिद्ध हो पाते । अधिकतर पदों पर दृष्टिपात करने से वह सगुण धर्मावलम्बी मालूम पड़ता है । यह भी सम्भावना है कि कोई अन्य मीरां होगा जिस पर सन्तमत का प्रभाव हो, उसकी रचनाएँ बाद में आलोच्य

* मुं० देवी प्रसाद मुंसिफ—मीरांबाई का जीवन चरित्र

+ वियोगी हरि—मीरांबाई, सहजोबाई, दयाबाई का पद्य-संग्रह

विचार और अध्ययन]

मीरा की समझी जाने लगी हों। सचमुच, यह पूर्ण विवादास्पद विषय है जिस पर पूर्ण खोज की जरूरत है क्योंकि मीरा की ऐसी पंक्तियाँ भी पायी जाती हैं —

‘तेरो मरम नहि पायौ रे योगी ।

आसण मांडि गुफा में बैठो, ध्यान हरि को लगायो ।

गल बिच सेली हाथ हाजरियो, अग भभूति रमायो ।

मीरा के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सो ही पायो ।’

(६) नारी होने के कारण माधुर्य-भाव की उपासना में, गोपी भाव की आराधना में अत्यधिक सच्चाई और गहराई है। एक भक्त हृदय-नारी के लिए इस प्रकार की साधना ही स्वाभाविक और सरल थी। परशुराम चतुर्वेदी ने ठीक ही कहा है—‘माधुर्य भाव वा परमभाव की पद रचना करते समय मीराबाई को, इसी कारण, पुरुष-भक्त-कवियों की भाँति, कृष्ण के प्रति उनकी प्रेमिका ब्रज-सुन्दरियों द्वारा प्रदर्शित विविध भावों का वर्णन करना नहीं है और न अधिक से अधिक अपने ऊपर स्त्री भाव का कोई काल्पनिक आरोपकर तद्वत चेष्टाओं का प्रदर्शन ही करना है। वे स्त्री हैं और अपने इष्टदेव श्री गिरिधरलाल को पतिरूप में स्वीकार भी कर चुकी हैं, अतएव उन्हें अपने को किसी अवस्था विशेष में रखने का प्रयत्न नहीं करना है।’ + यद्यपि आज के कुछ मनोवैज्ञानिक आलोचक जीवन की अतृप्त-इच्छाओं को ही आधारभूत कारण दूढ़ सकते हैं जसे महादेवी में दूढ़ जा रहा है तथापि हम डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में इतना ह। कहेंगे—‘मीरा एक कोकिला सी बैठकर अपने गिरिधर गोपाल का गीत गाती है। वह पृथ्वी पर नहीं है, वृक्ष की सबसे ऊँची डाल पर, स्वर्ग के कुछ पास है।’

निश्चय ही मीरा की रचनाओं का सच्चा पाठक उसमें भक्ति-भाव के पावन-स्त्रोत का दर्शन करेगा, उसकी चिह्नलता में परमतत्त्व के विरह का कसमसाहट का अनुभव करेगा; जिसमें लौकिक-प्रेम नहीं, अलौकिक-प्रेम व्यक्त हुआ है। सांसारिक पक्ष का महत्व कदापि नहीं स्वीकार किया जायगा ।

ई० १९५४

+ परशुराम चतुर्वेदी—मीरा बाई की पदावली

+ डा० राम कुमार वर्मा—मीरा का काव्य

पंत के काव्य में मंगलवाद

“युगान्त में पल्लव की कोमल-कान्त कलाका अभाव है। इसमें मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य में मैं इसे पूर्ण रूप में ग्रहण एवं प्रदान कर सकूंगा।”—पंत और हिन्दी-साहित्य के उद्भट आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं ... ‘युगान्त’ में आकर वह सौंदर्य और आनन्द का जगत् में पूर्ण प्रसार देखना चाहता है।” अर्थात् उपर्युक्त कथनों के आधार पर हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि ‘युगान्त’ से ‘पंत’ ने एक नया मोड़ लिया है। सौंदर्य-पूरित प्रकृति की अद्भुतमयी तीव्रानुभूति, चित्रमयी भाषा, लाल्पणिक वैचित्र्य, अप्रस्तुत विधान-योजना, वैयक्तिकता आदि का शनैः-शनैः कम होना और जन-जीवन से संबंध स्थापित होना एक नयी दिशा का सफल संकेत है। राहुल जी भी ‘युगान्त’ से उनका नया जीवन मानते हैं। अब भय का अंकुश उनके हृदय से हट गया। ‘अल्मोड़ा में गांधीजी एवं राजा काला-कांकर और कुंवर सुरेश सिंह से मिलन के बाद (१९३०) इनकी प्रवृत्ति प्रेरणामूलक होने लगी। आशावाद का अरुणिम-सूर्य उदयांचल पर आता दीख पड़ा।’ यों तो प्रारम्भ एवं पृष्ठभूमि ‘गुंजन’ है जिसमें वैयक्तिक आशा, उल्लास, वेदना, स्मृति के साथ ठोस तत्व, जन-जीवन का भी समन्वय हुआ है। वास्तविक उत्स की पहचान कर किसी आलोचक ने ठीक ही कहा है—“निराशा के कालोपन के पारचिरानन्द के नन्दन वन में फुटुक-फुटुक कर गानेवाला कवि अब दुःख-सुख की अस्थिरता को जान चुका है, उसका ‘गुंजन’ चिरानन्द की तान है।” अतएव ‘गुंजन’ में कवि जन-जीवन से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। और तब उसका वैयक्तिक प्रेम विराटत्व ग्रहण कर मंगल-भावना से मण्डित हो, काव्य-धारा का प्रणयन करता है। मंगल शब्द विभिन्न लिङ्गादि में, विभिन्न अर्थ का द्योत होता है परन्तु प्रस्तुत निबन्ध में मैंने श्वः श्रेयसं, शिवं, भद्रं कल्याणं, मङ्गलम् शुभम् के अभिष्ट रूप में ग्रहण किया है जो शिवम् का पर्याय-वाची है। यद्यपि इस पवित्र धारा में निमज्जित उनकी कविता कलावादियों को उतनी सुरुचिपूर्ण नहीं प्रतीत होती है, वस्तुतः यह सत्य ही है, फिर भी कला कला के लिए नहीं होकर, जनवादी भावना से चालित हो, मानवता के लिए श्रेयस्कर ही सिद्ध हुई। हमें स्मरण रहे उक्त प्राणभूत तत्व से वंचित

विचार और अध्ययन]

छायावादी कविता शीघ्रातिशीघ्र समाज के सन्मुख निष्प्राण हो गयी, मृतप्राय हो गयी, क्योंकि मनुष्य और समाज में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों का परस्पर एक दूसरे पर अस्तित्व अवस्थित है।

‘वैज्ञानिक, तर्क-प्रधान युग में रूढ़िग्रस्त धारणाएँ समाप्त होती जा रही हैं। आधारभूत प्रमाण के अभाव में विश्वास का उदय संभव ही नहीं। आज धर्मान्धता और वर्गभेद, असमानता सद्यः नहीं। कविता जो ‘विश्व का अन्तरतम सांगीत है। आनन्द का रोम हास है। उसमें हमारी सूक्ष्मतर दृष्टि का मर्मप्रकाश है’ (पाँत के शब्दों में) जो वीणा-पल्लव आदि तक मधुर-रस को बर्णन करता रहा है, अब तेज स्वर कर, नवीन मूल्यों को आँकती है, नवीन भावनाओं को प्रश्रय देती है, वास्तविकता का तीव्र स्वर सुनाती है—

आज बचपन का कोमल गात जरा का पीला पात।

चार दिन सुखद चाँदनी रात और फिर अधकार अज्ञात

कवि जीर्ण और जर्जर को, नव-जीवन-सौंदर्य के लिए, अनुपयुक्त समझ कर उद्धोष करता है—

द्रुत भरो जगत के जीर्ण पत्र हे स्वस्त ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण

हिम-ताप-पीत, मधु बात भीत, तुम वीतराग जड़ पुराचीन।

परन्तु हमें स्मरण रहे, संवेदनशाल कवि पुरातन के ध्वांस के साथ ही निर्माण का सन्देश देता है—

रिक्त हो रही आज डालियाँ डरो न किंचित,

रक्तपूर्ण, मांसल होगा फिर, जीवन रंजित।

कवि, संसार का मंगल चाहने वाला प्रवर्तक कवि, अपने मानव-समाज को पूर्व ही राय दे चुका है—‘तप रे मधुर मधुर मन ! विश्व-वेदना में तप प्रतिपल जग-जीवन को ज्वाला में गल, वन अकलुष, उज्ज्वल और कोमल।’

उसका विश्वास है—‘जिस प्रकार यह पृथ्वी बाहर से एक है उसी प्रकार भीतर से भी इसे एक आत्मा, एक मन, एक वाणी और एक विराट् संस्कृति की आवश्यकता है।’ वह व्यष्टि और समष्टि, ज्ञान और विज्ञान का समन्वय चाहता है—

ब्रह्मज्ञान रे विद्या, भूतो का एकत्व, समन्वय।

भौतिक ज्ञान अविद्या, बहुमुख एक सत्य का परिचय ॥

यह पूर्ण सत्य है कि कवि ने व्यक्ति रूप में गांधीवाद और सामाजिक रूप में साम्यवाद (संकीर्ण-रूप में नहीं) को प्रश्रय दिया है। जैसे उनके काव्य

पर कीट्स, वर्ड्सवर्थ, शेली, और संस्कृत-कवियों तथा रवि बाबू का प्रभाव है; उसी प्रकार विचार की दृष्टि से रवीन्द्र-दर्शन, गांधी और मार्क्स-दर्शन एवं अरविन्द-दर्शन का समन्वित प्रभाव उनके काव्य में परिलक्षित होता है। इस आधार पर उन पर बहुतों ने दोषारोपन किया है ! परन्तु वे तद्युगीन नाना भाव-धाराओं एवं चिन्तन-पद्धतियों की ओर इस लिए आकृष्ट होते हैं क्योंकि वे सभी वादों में निहित मंगल-भावना को ढूँढ़ कर मानवहित करना चाहते हैं। और यह प्रवृत्ति बुरी नहीं, ऐसी मेरी धारणा है। वे साम्यवादी भावना को प्रश्रय देकर भी अन्तःशुद्धि, प्रेम एवं अव्यक्त सत्ता पर विश्वास रखते हैं। कवि कहता है—‘ईश्वर पर चिरविश्वास मुझे।’ परन्तु उनकी आध्यात्मिकता “ऐसी आध्यात्मिकता (है) जो मनुष्य के बौद्धिक, मानसिक, प्राणिक, कायिक तथा उसके भौतिक अस्तित्वों के जीवन को सर्वांगपूर्ण सक्रिय सामंजस्य में संवार कर उसे सुन्दर से सुन्दरतर, शिव से शिवतर तथा सत्य से बृहत्तर सत्य की ओर ले जा सके। ... यह एक अंध-विश्वास-मात्र है जो ऐसा समझते हैं कि आध्यात्मिकता केवल अभाव दारिद्र्य, तथा जीवन के प्रति विरक्त और वितृष्णा के जंगल में ही फूलती-फलती है। और यह भी एक अपवादमात्र है जो कहते हैं कि आध्यात्मिकता जीवन-संघर्ष से दूर करी हिमालय की चोटी में या शून्य आकाश में निवास करती है। वास्तव में आध्यात्म मानव-जीवन का ही पूर्ण दर्शन है, उससे मनुष्य की समस्त समस्याओं का समाधान मिलता है, और वह इसी पृथ्वी पर मानव-जीवन को पूर्ण रूप में चरितार्थ करने की शक्ति रखता है।” * पंत ने विश्वास को जीवन में बहुत महत्व दिया है—‘सुन्दर विश्वासों से ही बनता, रे सुखमय जीवन।’ अन्ततोगत्वा मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि पंत के काव्य में मंगलभावना का तीव्र और सुखद रूप परिब्याप्त है—

“दीप शिखा— सी जगे चेतना मिट्टी के दीपक से उठकर,

तैल धारवत् मर्म स्नेह पा स्वर्ग विभा से दे भूतल भर।” +

उन्होंने स्पष्ट कहा है— “आज का कवि एव कलाकार जिस मांसल रंगों का वैचित्र्य तथा अकृत्रिम सौन्दर्य भरने की साधना में लगा हुआ है... पर एक मानवता की कल्पना तथा एक भूजीवन का स्वर्ग ही तो है। निकट भविष्य में मनुष्य को बृहत्तर ज्ञान की सहायता से काल के व्यवधान को भी

* सुमित्रा नन्दन पंत—मेरी मनोकामना का भारत

+ स्वर्ण—किरण—पंत

विचार और अध्ययन]

अतिक्रमण करना है, और अतीत के गहरे गतों से ऊपर उठकर, इतिहास के कुहासे की भित्तियों को छिन्न-भिन्न कर जातियों, धर्मों, रीतियों, रूढ़ियों के छोटे बड़े अधंकार—भरे कदों तथा खंडहरों से बाहर निकल कर एक महत्तर शिवतर मानव-संस्कृति-प्रांगण में समवेत होना है ।... वह अपने अतीत की सीमाओं के बन्धन को तोड़ कर विश्व-एक्य तथा लोक-मान्य पर प्रतिष्ठित बृहत्तर मानवता के आर्द्रश को अपने जीवन में चरितार्थ करना चाहता है ।”

पंत ने ‘ग्राम्या’ में जातिभेद की कठोर - कारा से मुक्ति का प्रेरणा देते हुए कहा है—

“जाति वर्ण की श्रेणीवर्ग की तोड़ भित्तियां दुर्धर ।

युग-युग के बन्दी यह से मानवता निकली बाहर ॥”

हमें स्मरण रहे कि पंत जी ने सामाजिकता, लोक-मंगल की भावना का गुणगान करते हुए कहा है—“मैं तरुण भारत की आंखों में इस नवीन मानव-संस्कृति के स्वप्नों का सौन्दर्य देखना चाहता हूँ, उसके मुक्त हृदय को धड़कन में व्यापक और उच्चतर भावनाओं के संगीत की झंकार सुनना चाहता हूँ । मैं उसके सौम्य आनन में नवीन मनुष्य की गरिमा की झलक पाना चाहता हूँ । भारत के नवोदित कवि विश्वजीवन के इस नवीन अरुणोदय के गीत गा सकें । और मानव-आत्मा के गहनतम सत्यो को वाणी दे सके ।” परन्तु कवि ने व्यक्ति के अस्तित्व की उपेक्षा नहीं की है—

‘विन्दु सिन्धु ? बूंदों का वारिधि बूंदों पर अवलंबित

व्यक्ति समाज ? व्यक्ति में रहता अखिल उदधि अन्तर्हित ॥”

और—“मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन ।’ मार्क्सवादी आलोचक डा० रामबिलास शर्मा ने पंत पर व्यंग करते हुए कहा है—‘दूसरे महायुद्ध के पहले जब कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बने थे तब से ‘उत्तरा’ के लिखने तक जनता की चेतना और उनके साथ हिन्दी-जनता की चेतना में काफी परिवर्तन हो गया है । अन्तस्चेतनावादी पंत जी से सामाजिक चेतना के ये परिवर्तन छिपे नहीं हैं । लेकिन वे इस नयी सामाजिक चेतना से सहानुभूति नहीं रखते, न बौद्धिक न हार्दिक । वह अपने पुराने समन्वयवाद को नया जामा पहना कर फिर हिन्दा-पाठको से कहते हैं, मैं प्रतिगामी नहीं हूँ । उनका व्यवहार उसकी प्रतिगामिता प्रकट कर देता है । पंत जी यदि अपने अन्तस्चेतनावाद से लोगों को बहकाना चाहते हैं तो कुछ दिन कोशिश करके और देखें ।’ परन्तु ऐसी आलोचना कितनी भ्रान्त धाराओं से ग्रस्त है यह पंत का प्रत्येक पाठक समझ सकता है । पंत को १९४० में पुनः हिमालय की गोद में (अल्मोड़ा)

आश्रय लेते देख राहुलजी ने कहा था—“उदय शंकर और पन्त दोनोंने जनता की शक्ति को समझा है। लेकिन जिस वातावरण में वह अब तक रहे हैं और अब भी हैं, उसमें वह शक्ति का उपयोग कर सकेंगे इसमें भारी संदेह है। पंत में तो और भी संदेह है क्योंकि रहस्यवाद का खोल तोड़ अब भी वह अण्डे से बाहर नहीं आये हैं, इसीलिये आत्मा और पुरानी दुनिया के सामने आते ही उनकी मानसिक विश्लेषण—शक्ति जवाब दे देती है। पन्त की कविताओं में ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं जिनमें वह इन ‘भूल-भुलैयाँ’ में पड़ कर दिग्भ्रान्त हो जाते हैं। और उनकी बुद्धि अभिरे में हाथ—पैर मारती दीख पड़ती है। यह सब होते हुए भी पन्त का विकास रुका नहीं। मकड़ी के जाले की तरह उसके मन ने एक अवास्तविक किन्तु मोहक दुनिया पैदा कर दी है। हम बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे कि कब इस दुनिया से उसका पिण्ड छुटता है।” परन्तु राहुल जी की शंका बहुत दूर तक समाप्त हो गयी होगी, ‘स्वर्ण-किरण’, ‘स्वर्णधूलि’, ‘रजत-शिखर’ आदि की रचना से। लेकिन हम डा० नगेन्द्र के इस कथन से पूर्ण सहमत हैं— “वास्तव में ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया कवि का चिन्तन-शक्ति और कल्पना विकसित होती गयी है और अनुभूति दबती गयी है अथवा इतनी संयत हो गयी कि उसकी सूक्ष्मता साधारण भावुकता की पकड़ से बाहर है।... ‘युगान्त’ में ...चिन्तन का इतना विकास हो गया है कि अनुभूति अधिकांश में दब गयी है।” *यह पूर्ण सत्य है कि जहाँ चिन्तन और दर्शन प्रबल होता जाता है प्रायः वहाँ अनुभूति दबती जाती है। इसी मंगल-भावना का प्रभाव है कि ‘ज्योत्स्ना’ में कवि नील रतन द्वारा राजनैतिक विषयों की व्याख्या और व्यवस्था में मंगल-रूप की आकांक्षा करता है। उदाहरण के लिये हम ‘ज्योत्स्ना’ देख सकते हैं। यह सच है कि ‘ज्योत्स्ना’ से ‘युगान्त’ में आकर उनका मानववाद, मंगल-भावना अधिक सुस्पष्ट हो गयी है। इसी निर्माण-भावना को देख कर शिवदान सिंह चौहानने पन्त को भविष्य का कवि कहा है।

हमें विश्व संस्कृति रे

भू पर करनी आज प्रतिष्ठित ।”—पन्त

६० १६५३

महादेवी वर्मा का गद्य-साहित्य

छायावादी महादेवी वर्मा को हम कवयित्री और गद्यकार दोनों रूपों में देखते हैं। आधुनिक हिन्दी-कविताक्षेत्र में उनकी रचनाओं को (कविताओं को) श्रेष्ठ पद प्राप्त है। यहां हमें उन्हें गद्यकार के रूपमें तथा उनके गद्यसाहित्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना है। गम्भीर सुचिन्तक तथा प्रमुख कहानीकार और उपन्यासकार जेनेन्द्र जी लिखते हैं—‘पद्य’ में जैसे उन्होंने अपनेको टटोला है और अन्त में अपने को निवेदित किया है, उसके प्रति जो उनकी अपनी धारणा है वह आत्मा से भिन्न नहीं है। इस तरह घूम-फिरकर उनका पद्य अधिकांश उन तक लौट आता है। उनके गद्य में सहज भाव से हम-तुम की चर्चा पाते हैं। उनमें मानव पात्र हैं और वास्तविक परिस्थितियाँ हैं। केवल आत्मा ही आत्मा वहां नहीं है। सहानुभूति का गति आवश्यक रूप से अपने से इतर के प्रति है। महादेवी के पद्य में वह इतर लगभग लुप्त है। इससे यह कहना कुछ हद तक ठीक ही है कि गद्यमें उनकी सहानुभूति अपेक्षा-कृत अधिक खिली है। मेरे ख्याल से शब्द सुन्दर बन पड़े हैं। और वह हम में सहानुभूतिपरक स्पन्दन जगाता है। समय है साधारण के महत्वको पहचानें। यह इन रेखा-चित्रों में हुआ है। इनमें महिम्न माने जाने वाले नायक-नायिकाओं के कल्पना-चित्र नहीं हैं। इसलिए मैं उन्हें बधाई दे सकता हूं।^१ सचमुच उनकी कविता में अज्ञेय के प्रति प्रणय-निवेदन, प्रिय की प्रतीक्षा और दुःख तथा पीड़ा का अथाह समुद्र लहरा रहा है। कविता के क्षेत्र में वे विचार नहीं छूते जो स्मरण और रेखा-चित्र के समय करते हैं। जिस मेहत-रानी को लेकर उन्होंने सुन्दर संस्मरण लिखा उसे कविता में स्थान नहीं दिया। देवेन्द्र सत्यार्थी कहते हैं—‘(महादेवी जी ने) गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में लिखने के प्रयोग किये हैं। मैं समझता हूं कविता में जिस सामाजिक तत्व की कमी है वह उनके गद्य में नहीं खटकती। स्मृति की रेखायें, अतीत के चलचित्र और श्रद्धा की कड़ियाँ, ये तीन, पुस्तकें महादेवी जी के गद्य की पताका पहराती हैं।... चित्रकला और कविता के क्षेत्र से कहीं अधिक संस्मरण और रेखाचित्र के क्षेत्रमें महादेवी का दर्शन मुझे प्रिय लगता है।’^२

❀ देवेन्द्र सत्यार्थी—महाश्वेता महादेवी

इनके (श्री सत्यार्थी जी के) विचार अपने हैं। हो सकता है, उनके गद्य से पद्य ही किसी को प्रिय लगे। परन्तु इतना तो निश्चित है कि उनका गद्यकार रूप भी कम सफल नहीं है। उनका गद्य, कविता की भांति, जीवनसे दूर नहीं ले जाता, वह तो हमारी शिराओं में चेतना भर कर हमें यथार्थ जीवन में भाँकने की प्रेरणा प्रदान करता है। उनमें उनका सरल, तरल, सजीव स्नेह भूखे, नंगे, निराश्रित बालकों, विधवाओं, वेश्याओं को देख कर उमड़ पड़ा है। और उनका कोमल हृदय अभावग्रस्त, पीड़ित, उपेक्षित, पुरुषों द्वारा रौंदी और सामाजिक बन्धनों में जकड़ी छुटपटाती नारियों की आशा-निराशा, हास्य-रुदन और अन्तर्बाह्य ऊहापोहों से द्रवित हो उठा है, विकल हो उठा है, करुणा से लबालब भर गया है। जहाँ कहीं उन्हें परवश, असहाय विधवा अथवा कुसुम-कली सी कांत-कोमल, अल्पवयस्का, पति-विहीना, किन्तु किसी पुरुष की विकृत काम-वासनाओं का शिकार, अवैधसंतति से विभूषित, क्षुब्ध, उत्पीड़ित कोई किशोरी बाला दीख पड़ी, वहीं उनके भीतर का तकाजा और भी अधिक दुर्दम्य, कठोर और आत्मवेदना से आलौड़ित होकर अभिव्यक्त हुआ। उदाहरण के लिए देखिये—‘स्मरण नहीं आता वैसी करुणा मैंने कहीं देखी। खाट पर बिछी मैली ढरी, सहस्त्रों सिकुड़न भरी मलिन चादर और तेल के कई धब्बे वाले तकिये के साथ मैंने जिस दयनीय मूर्ति से साक्षात् किया उसका ठीक चित्र दे सकना सम्भव नहीं है। वह अठारहसे अधिक की नहीं जान पड़ती थी, दुर्बल और असहाय जैसी। सूखेओठ वाले सांवले पर रक्तहीनता से पीले मुख में आंखें ऐसी जल रही थीं जैसे तेजहीन दोपक की बाती।’ यह पूर्णतया यथार्थ चित्रण है। समाजके उपेक्षित-दलितों का स्पष्ट चित्र है। संसार की कठोर निर्ममता और हृदयहीनता को उन्होंने देखा और खुली आंखों से देखा, उसमें कोई दुराव-छिपाव नहीं। इसीलिए गद्य में जनता के दुर्दमनीय अवसाद और आकुल पीड़ा को उन्होंने उद्बलित कर दिया है। यह चित्र उनके अनुभव के चित्र हैं, कल्पनारंजित नहीं ! डा० रामविलास शर्मा जी के शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि ‘महादेवी जी को जन-साधारण के प्रति बौद्धिक सहानुभूति ही नहीं, पीड़ित जनता से हार्दिक सहानुभूति भी है।’ * इनका व्यावहारिक जीवन ही ऐसा है कि ये इतर वर्गों की समस्या को देखती हैं। उनके साथ आत्मीयता स्थापित करती हैं। इनका गद्य-साहित्य समाज केन्द्रित है। उनका गद्य कई प्रकार का है—(१) विवेचनात्मक, (२) स्मरणात्मक, (३) नारी समस्यात्मक, (४) भावात्मक।

* डा० रामविलास—महादेवी वर्मा और आलोचना-साहित्य

विचार और अध्ययन]

नारी समस्यात्मक—इस में नारी-समाज का वास्तविक चित्रण है, जिसमें व्यंग का भी सहारा लिया गया है। मासिक 'चाँद' की उनकी नारी-समस्या-विषयक सम्पादकीय - टिप्पणियाँ पुस्तक के रूप में 'शृंखला की कड़ियाँ' के नाम से प्रकाशित हुई हैं। इसमें नारी समस्या का सत्य-चित्र है, जो मर्मस्पर्शी है। वे लिखती हैं—'इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पत्नी पाल लेता है, उसी प्रकार एक स्त्री को पाल लेता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियों के समान ही यह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है। हमारे समाज के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय गुलाब सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए। उस समय असमय में प्रौढ़ हुई, दुर्बल सन्तानों की रोगिणी पीली माता में कौन सी विवशता, कौन सी रुला देने वाला करुणा न मिले !' * वे पुनः लिखती हैं—'साधारण रूप-वैभव के साधन ही नहीं मुट्ठी भर अन्न भी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन से भारी ठहरता है।' + सुचमुच नारी की बड़ी करुण अवस्था है परन्तु इसमें केवल पुरुष ही दोषी नहीं हो सकते, नारी भी है। वह इतना शक्तिहीन और परार्थीन बन गई है कि दूसरों को शासन तथा अत्याचार का अवसर देती है।

महादेवी जी ने नारी-समस्या, विधवा, वेश्याओं की समस्या, चहारदिवारी के अन्दर कैद हिन्दू-नारी और पुरुष शामिल समाज का, मार्मिक ढंग से वर्णन किया है और उस पर व्यंग भी किया है। कहीं-कहीं वह व्यंग बहुत तीखा भी हो गया है। परन्तु वैयक्तिकता की छाप लिए है।

महादेवी जी सहानुभूतिपूर्ण ढंग से वेश्या-जीवन पर विचार करती हैं; इसे देखिये 'यदि स्त्री की ओर देखा जाय तो निश्चय ही देखने वाला काँप उठेगा। उसके हृदय में प्यास है, परन्तु उसे भाग्य ने मृग-मरीचिकों में निर्वासित कर दिया है। उसे जीवन भर आदि से अन्त तक सौंदर्य की दुकान लगानी पड़ी। अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओं को कुचल कर आत्म-समर्पण और सारी इच्छाओं का गला घोट कर रूप क्रय-विक्रय करना पड़ा। और परिणाम में उसके हाथ आया निराश-इताश एकाकी अन्त।'—शृंखला की कड़ियाँ।

* महादेवी वर्मा—शृंखला की कड़ियाँ

+ महादेवी वर्मा—अतीत के चलचित्र

वेश्याओं के प्रति जो दृष्टिकोण उद्धृत किया गया है वह केवल सहानुभूतिपूर्ण है। नहीं, प्रगतिशील भी है। जहाँ की, जिस समाज की स्त्रियाँ अधिक पराधीन हैं वहीं यह हीन-वृत्ति (वेश्यावृत्ति) भी सबसे अधिक है। जहाँ सम्पूर्ण समाज के साथ-ही-साथ नारी भी स्वाधीन है, वहाँ वेश्यावृत्ति नहीं देखी जाती है। श्री अमृतराय जी का कहना है + कि रूस में सम्पूर्ण समाज स्वाधीन है इसलिए वहाँ वेश्यावृत्ति का नाम भी नहीं है और वे स्त्रियाँ जो कभी वेश्यावृत्ति से जीविका उपार्जित करती थीं, आज सम्पूर्ण नागरिक-अधिकारों के साथ अपने समाज की ही क्रियाशील सदस्याएँ हैं और देश को उन पर अपनी अन्य पुत्रियों के समान ही गर्व है।

साथ ही महादेवी जी नारी के कर्तव्य और अधिकार में संतुलन रखना चाहती हैं। उनके विचार से नारी का अधिकार और कर्तव्य घर और बाहर दोनों जगह होना चाहिए, परन्तु सन्तुलित ढंग से क्योंकि दोनों एक दूसरे का पूरक हैं। वे कहती हैं—‘वास्तव में स्त्री भी अब केवल रमणी-भार्या नहीं वरन् घर के हर समाज का विशेष अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक है, अतः उसका कर्तव्य भी अनेकाकार हो गया है।’

महिलाओं के लिए महादेवी जी ने बाल-साहित्य, रोगियों की सेवा-सुश्रूषा, महिला-साहित्य आदि अधिक उपयुक्त माना है। इस क्षेत्र में रूस की स्त्रियों ने बहुत सफलता प्राप्त की है।

संस्मरणात्मक—महादेवी जी के संस्मरण भी काफी सफल हैं। इस प्रकार के गद्य में मनोविज्ञान के साथ भावावेग भी है। मानव तथा प्रकृति-चित्रण में महादेवी ने कमाल कर दिया है।

हिन्दी के प्रसिद्ध संस्मरण - लेखक और रेखा-चित्रकार श्री बनारसी दास चतुर्वेदी जी ने ‘चीनी फेरी वाले’ रेखा-चित्र को साहित्य का स्मरणीय रेखा-चित्र कहा है। अलोपा, रामा, बदलू और सबिया हिन्दी में अपने ढंग के सुन्दर और सफल रेखा-चित्र हैं। उनके रेखा-चित्रों में पात्र स्वयं कम बोलते हैं, प्रायः वे ही अधिक पात्रों के विषय में बोलती हैं। महादेवी जी कवयित्रा हैं इसलिए रेखाओं में भावना और कल्पना के रङ्ग भरती हैं। वे सादी रेखाओं से ही चित्र को नहीं खींचती हैं। उनके वाक्य लम्बे होते हैं, किंतु शिथिल नहीं। भावात्मकता का अंश पर्याप्त रहता है।

+ अमृत राय—गद्यकार महादेवी और नारी-समस्या

विचार और अध्ययन]

बेनीपुरी जी के रेखाचित्र कहानी या कथाप्रधान हैं; बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने अधिकतर बड़े लोगों के रेखाचित्र और संस्मरण लिखे हैं परन्तु इन्होंने (महादेवी जी ने) उपेक्षित और दलितों की कथावस्तु को ग्रहण किया है। यद्यपि उन्होंने लम्बे लम्बे वाक्य भी प्रयुक्त किये हैं, जो कहीं-कहीं जटिलता उत्पन्न कर देते हैं, फिर भी उनका गद्य-साहित्य सफल और उन्नत है।

डा० रामविलास शर्मा जी के शब्दों में हम स्पष्ट रूप से स्वीकार कर सकते हैं कि 'महादेवी जी के गद्य में जीवन और सौन्दर्य की आकांक्षा का स्वस्थ मानवी पक्ष भी है।'

हिन्दी के प्रसिद्ध निबंधकार और समालोचक श्री गुलाबराय, एम० ए० लिखते हैं कि 'मैं गद्य में महादेवी जी का लोहा मानता हूँ।' श्री रामचरण महेन्द्र के शब्दों में कह सकते हैं कि 'हृदय की विशालता, भाव प्रसार की विलक्षण शक्ति, मर्मस्पर्शी शब्दों की नक्काशी महादेवी जी की गद्य-शैली में ऐसी धुल-मिल गयी है कि अनायास ही वह जीवन और समाज की विषम पहलियों पर सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि डाल देती है—व्यक्ति और समाज के रेखाचित्र बड़े सजीव और रंगीन हैं।' समाज ही उसका मूलधार है जिनके आधार पर उनके सफल गद्य-साहित्य का भव्य महल खड़ा है। सचमुच, जो कभी उनकी कविता में दीख पड़ती है उसकी पूर्ति गद्य-साहित्य में हुई है। कविता की तरह उनका गद्य-साहित्य अन्तर्मुखी नहीं है। इसलिए कुछ आलोचकों ने उचित ही कहा है कि उनका गद्य और पद्य-साहित्य 'एक दूसरे का पूरक' जैसा मालूम पड़ता है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा है 'महादेवी वर्मा के रेखाचित्र भी बहुत ही जीवित चित्रण हैं।'

विवेचनात्मक गद्य वह है जिसमें मननशील की उद्भावना है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका और 'यामा' की भूमिका इसके उदाहरण हैं। ये गद्य भी अपनाकम महत्व नहीं रखते। वे अलोचनाक्षेत्र में प्रकाश डालते हैं महादेवी की आलोचना-शैली चिन्तन की शैली है जिसमें विचार और अनुभूति का संयोग है। डा० नगेन्द्र ने कहा है 'महादेवी के ये निबंध काव्य के शाश्वत सिद्धान्तों के अमर आख्यान हैं! वर्मा जी जगत् के खंड में अखंडता प्राप्त कर लेना ही सत्य मानती हैं और उसकी विषमताओं में

* रामचरण महेन्द्र—महादेवी की गद्य-शैली

सामंजस्य देखना ही सौन्दर्य है। महादेवी जी इन्हीं दो तथ्यों को साहित्य का साध्य और साधन मानती हैं।^१ +

“...सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त। इसी से साधन का परिचय, स्निग्ध खण्ड रूप से साध्य की विस्मय-भरी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठता चलता है।”

वे छायावाद के विषय में लिखती हैं “स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छायावाद उपयुक्त ही था। और मुझे आज भी उपयुक्त ही लगता है।”

‘छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का श्रृणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है।’

‘छायावाद करुणा की छाया में सौन्दर्य के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक सर्ववाद है।’ उनके अनुसार—

(क) छायावाद की मूल चेतना सर्ववाद है।

(ख) उसकी भाव-भूमि मुख्यतः प्रकृति है।

(ग) छायावाद में अमूर्त और मूर्त का सफल सामंजस्य पाया जाता है। आदि इन्हीं तत्वों को देखकर आलोचक डा० नगेन्द्र ने कहा कि ‘ऐसा लगता है कि महादेवी जी ने छायावाद की तन्वी कविता पर दर्शन का बोझ कुछ अधिक लाद दिया है।’ सचमुच इनके इस प्रकार के गद्य चिन्तन प्रधान और कुछ हद तक क्लिष्टता से युक्त हैं, परन्तु इतना स्मरण रहना चाहिये कि आलोचना-साहित्य के क्षेत्र में अपना काफी महत्व रखते हैं। महादेवी अपने विचारों को प्रकट करने में संकोच नहीं करती इसलिए उनके विचारों का महत्व काफी है। इन्होंने जो कुछ कमी छायावाद में देखी हैं उसे भी कहने में संकोच नहीं किया। छायावाद की प्रमुख कवयित्री होती हुई भी इस प्रकार स्वतन्त्र और स्पष्टता पूर्वक छायावाद की कमी को कहना कोई आसान काम नहीं है। और यह उनकी महानता ही है। वे अपनी धारा की कमी को छिपाना नहीं चाहती। महादेवी जी छायावाद के विषय में कहती हैं—“छायावाद के कवि को एक नवीन सौन्दर्य-लोक में ही रागात्मक दृष्टिकोण मिला, जीवन में नहीं, इसी से वह अपूर्ण है।” निश्चय ही यह छायावाद की कड़ी आलोचना है।

ई० १९५०

+ डा० नगेन्द्र—महादेवी की आलोचक दृष्टि

रामकुमार वर्मा का काव्य-वैभव

डाक्टर रामकुमार वर्मा बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं जिन्होंने गद्य और पद्य दोनों से हिन्दी को गौरवान्वित किया है। कविता के क्षेत्र में जिस प्रकार उन्हें शीर्ष स्थान प्राप्त है, उसी प्रकार उनके गद्य-साहित्य ने सफलता के उत्तुंग शिखर पर आरोहण हो अपनी धवल ज्योत्सना से भारती के प्रांगन को रससिक्त, एवं सौन्दर्यान्वित कर दिया है। उच्च कोटि के आलोचक, चिन्तक, विचारक, प्रथम कोटि के एकांकीकार (स्मरण रहे बहुत से आलोचकों ने वर्मा जी को एकांकी का जनक माना है।*) और सफल कवि का गुण उनमें एक साथ वर्तमान हैं। निश्चय ही ऐसी प्रतिभा आधुनिक साहित्यकारों में केवल निराला, प्रसाद, महादेवी, अंचल और शास्त्रीमें ही देखी गई है। प्रस्तुत लेख में वर्मा जी के काव्य-वैभव पर ही विचार किया गया है।

डा० रामकुमार वर्मा की कविता भारतीय कलासृष्टि का अपूर्व कल्पना-विलास, भाव-सौन्दर्य, निगूढतम चिन्तन एवं मनन समन्वित श्रेष्ठ निधि है जो भारतीय-साहित्य का प्रतिनिधित्व सफलता पूर्वक करती है। आज जब विकसित काव्य-कला के युग में प्रत्येक पाठक कलापक्ष के साथ पूर्णता द्वन्द्वता है, सन्तुलन चाहता है, वर्मा जी की कविताओं से उन्हें पूर्ण सन्तुष्टि होनी चाहिये।

सर्वप्रथम १९२० में उनकी 'वीर हम्मीर' रचना प्रकाशित हुई जो ऐतिहासिक कथा-काव्य हरिगीतिका छन्द में रचित है। इससे इनके काव्य के भविष्य का सहज ही पता लगता है। दूसरी कृति 'कुल-ललना' (१९२८ सन्) है। यह पुस्तक विविध विषयों पर रचित पूर्णतया नारी-ज्ञान के निमित्त पद्य बद्ध विचार-संग्रह है। इसमें सुधार और सुभाष की प्रवृत्ति है, तथा इसमें हिन्दू संस्कृति और गांधीवाद (वह युग भी गांधी का था।) का स्वर मुखर हो उठा है। स्वदेश प्रेम और आदर्श विचारों की अभिव्यक्ति सरल भाषा में हुई है। मेरे विचार से इस पुस्तक में कला-पक्ष के अभाव के साथ ही सबसे बड़ा दोष यह है कि एकांगी विचार प्रकट किया गया है। नारी को उपदेश दिया गया है, परन्तु पुरुष को कुछ भी नहीं कहा गया और सच है कि दोनों के सन्तुलन से ही समाज का चक्र ठीक से

* बच्चन सिंह—हिन्दी-नाटक

चलता है। ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' के अनुसार "यह पुस्तक रीतिकाल के लक्षण-ग्रन्थोंके अनुरूप रची गई है।" + 'वितवन' में भावुकताका वेगपूर्ण स्रोत है, परन्तु भावना के साथ ही विचारों का भी सामंजस्य है। काव्य-कला की दृष्टि से उपर्युक्त सभी रचनाओं से यह सुन्दर है। परन्तु, विचार का तारतम्य नहीं टूटता और इससे वर्मा जी की एक प्रबल प्रवृत्ति पर प्रकाश पर जाता है। 'चित्तौड़ का चिता' ऐतिहासिक कथानक पर आधारित कल्पना से सुवर्जित काव्य है जिसमें भारतीय-महिमा और गौरव के प्रति श्रद्धा प्रकट की गई है। भारतीय संस्कृति से उसे अटूट प्रेम है इसलिए प्रस्तावना में ही लिखा है—

‘अरे भारत भू के इतिहास ! अचल विद्युत-रेखा अनुरूप
दिखा गौरव प्राचीन अनूप हृदय नभ उज्ज्वल करे स-हास।’

और—‘वीर भारत जननी-पद धूल, शीश पर सज्जित रहे समोद
खेलने को हो उनकी गोद उन्हें श्रद्धांजलि के हैं फूल।’

यह प्रारम्भिक काव्य (१९२६ में प्रकाशित) होकर भी वीर और करुण रस से आप्लावित काव्य है जो बरबस पाठकों को प्रभावाच्छन्न कर लेता है।

‘खोल कर अपने कुंचित केश चिता में मालाएं दी डाल,
किया फिर केसर-सज्जित भाल, बनाया मंगलमय सब वेश।
मिलाया लपट करों से हाथ, चिता के अंक हुई आसीन
पहिन लपटों का वस्त्र नवीन हुई सज्जित स्वाहा के साथ।’ (द्वादश सर्ग)

कई स्थलों पर कवि ने जानकर काव्यगत-सौन्दर्य और प्रभविष्णुता उत्पन्न करने के निमित्त, कल्पना का सहारा ले, वास्तविकता का उलघन किया है, परन्तु निःसन्देह उससे काव्यगत-सौन्दर्य निखर गया है। और स्वाभाविकता पर भी कुठाराघात नहीं होता। जैसे ऐतिहासिक प्रमाण है कि राणा सांगा का अंग युद्ध के फलस्वरूप भंग था, कर्मवती (करुणा) से मिलने के पूर्व (उदयपुर राज्य का इतिहास); परन्तु यदि कवि संग्राम वर्णन में अंगभंगी, असुन्दर राणा को प्रस्तुत करता तो भावुकता को ठेस लगती और कुछ अंशों में सम्भव था कि वह संयोगस्थल उतना सुन्दर चित्रित न हो पाता। कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है 'सौन्दर्य की रक्षा इसी में है कि महारानी करुणा और संग्राम का मिलन

+ ज्योति प्रसाद 'निर्मल'—नवयुग-काव्य-विमर्ष

विचार और अध्ययन]

राणा के कुरूप होने के पहले ही हो गया है । अन्यथा निम्न पंक्तियों में क्या रस रह जाता—‘किन्तु पोछे से कर-पल्लव-उठे—

जिन पर प्रस्वेद की बून्द लिये करुणा के युग दृगमून्द
मिले कर दृगसे सहित दुकूल कपोलों पर का हुआमिलन
खिले तब दोनों बदन-सुमन हुए लज्जित उपवन के फूल ॥’

प्रकृति एक ऐसी सुन्दरी है जिस और भावुक कवियों का मन अनायास आकृष्ट होता आया है । कुमार जी छायावादी परम्परा में ही आते हैं और छायावा-दियों ने प्रकृति से गहरा सम्बन्ध स्थापित कर लिया था । इस प्रवृत्ति की भी व्यंजना ‘चित्तौड़ की चिता’ से स्पष्ट रूप से हो जाती है । उदाहरण के लिए देखिये—

‘आ गई नभ में तारक-माल खिल गये मानो सुन्दर फूल,
गया है शशि उनमें पथ भूल, अभी तो है वह भोला बाल ।’-द्वि० स०
यहां प्रकृति द्वारा उपदेश एवं शिक्षा भी मिलती है—

‘ग्रीष्म का भीषण प्रखर प्रताप, जलाता सौरभवान वसंत ।
सुछुविका हो जाता है अन्त पुण्य दृष्ट जाता है पाप ।’

द्वितीय सर्ग में चित्रित संयोग एवं महारानी करुणा का शृंगार-चेष्टाएं भी पाठकों को आकर्षित किये बिना नहीं रहती । करुणा का अपने पति के लिये माला तैयार करना और पति—स्मरण में उसका सिहरन और रोमांचित होना और स्वयं लज्जा से मुख लाल होना ऐसी स्वाभाविक क्रियाएं हैं जो दाम्पत्य जीवन के सुखमय आभूषण एवं शृंगार हैं—

‘नाथ के चरणों में वह हार, चाहती थी करना सज्जित,
किन्तु नव-परिणीता लज्जित सहन करती ब्रीड़ा-भार ।’

अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में बारम्बार राह की ओर आंख उठा कर देखना, पत्नों के हिलने पर उनका आना समझ कर कुछ घबराना और तब लज्जा से रंग जाना बड़ा ही भावुक और जीवंत चित्र है—

कभी यदि हिले वृक्ष के पात सोचती, आए जीवन नाथ
देखती थी लज्जा के साथ अरुण हो जाता था सब गात ।’

इसके विपरीत जौहर का दृश्य और राणा की मृत्यु के पश्चात् महारानी का विलाप बहुत ही मार्मिक और करुण हो गया है । महारानी के अन्तर में पूर्व-स्मृतियां उठ कर हृदय को छलनी बना देती हैं—

‘प्रेम आंसू भर होती मौन, पोछते थे जतला कर प्यार
उमड़ती हैं आंसू की धार, पोछने अब आवेगा कौन ?’

[रामकुमार वर्मा का काव्य-वैभव]

यह भी एक स्वाभाविक मनोक्रिया है। मृत्यु के बाद मनुष्य के सभी क्रिया-कलाप आँसू बन कर आँखों में छा जाते हैं। अष्टम-सर्ग में बाल-क्रीड़ा का सुन्दर चित्रण है जब उदय सिंह माँ से (कण्णावती से) तुतली बोली में बातें करता है। रानी में क्रोध और कण्णा के भावों का एक साथ उदय होने पर उसकी आँखों का जो रूप अंकित किया गया है वह बड़ा ही सुन्दर है—

‘श्याम, मृदु, श्वेत और कुछ लाल, दिख पड़े अश्रु-बिन्दु के साथ,
हुए थे मानों नयन सनाथ, त्रिवेणी-संगम से उस काल ।’
हुमायूँ का आदेश भी बड़ा ओजस्वी है—

‘न समझो अपनी जान अजीज बढ़ोखुश हो मैदाने जंग
देख कर सब हो जावे दंग समझना तुम सब को नाचीज ।’

निश्चय ही वर्मा जी की इस रचना को अधिक महत्व दिया जायगा। इसमें वर्णनात्मक-शक्ति तथा भावुकता के सामंजस्य से कलात्मकता भरपूर हो गई है। परन्तु महाकाव्य की भव्यता और शालीनता उतनी नहीं आ पाई। फिर भी प्रस्तुत रचना वर्मा जी की महाकाव्यगत शक्ति के उद्भव एवं अंकुर के प्रस्फुरण का सहज संकेत कर देती है।

उपर्युक्त रचना के भाव सरल, परन्तु सरस हैं। रस की मंदाकिनी अप्रतिहत गति से प्रवाहित होकर पाठकों के मानस को अभिसिंचित कर देती है। छंद भी वीर और कण्ण भावों के उपयुक्त चयन किए गए हैं। उस का तुकान्त भी एक अलग ढंग का है। प्रथम, चतुर्थ और तृतीय में तुक साम्य है। ‘ऐसा करने में मेरा एक अभिप्राय है। वह यह कि भाव की गति प्रथम और द्वितीय पंक्तियों के तुकान्त से न रुक कर तीसरे चरण तक जाती है और फिर वहाँ चतुर्थ चरण में समाप्त होकर प्रथम चरण का स्मरण दिलाती है। ऐसा करने में एक प्रकार की तीव्रता, ध्वनि और शक्ति आ जाती है।’ संगीतात्मकता की लहर भी पूर्णतया है जिससे कवि के कथनानुसार ही तीव्रता बढ़ जाती है। स्मरण रहे संगीत का आग्रह इनकी प्रायः सभी रचनाओं में मिलेगा जो इनकी लोकप्रियता के कारणों में एक है।

‘अभिशाप’, ‘अंजलि’, आदि से कुमार जी पूर्ण छायावादी एवं रहस्यवादी कवि के रूप में प्रकट हो गए हैं। छायावाद (विस्तृत रूप में) इनके काव्य में पूर्ण उभार के साथ अभिव्यक्त हुआ है। प्रकाशक ने ‘अंजलि’ में स्पष्ट शब्दों में लिखा है—“इनकी कविता प्रकृति के अंगों को छूती हुई, ईश्वर की अनुभूति करना चाहती है। प्रकृति के उस रहस्यमय रूप में उसे प्रेम और सौन्दर्य के

विचार और अध्ययन]

सिवा कुछ नहीं मिलता । प्रेम के स्वरूप में निराशा अधिक है । उनका विचार है कि निराशा न हो तो प्रेम का सौन्दर्य नहीं निखरता । प्रकृति के प्रत्येक अंग में कुमार जी का आत्म-प्रदर्शन है । प्रकृति की मनोहर भांकी में कुमारजी को उस शक्ति के दर्शन होते हैं जो केवल सौन्दर्य से ही निमित्त है । सौन्दर्य की सुकुमार भावना से कवि की सभी कविताएँ डूबी हुई हैं ।” सौन्दर्योन्मुख कवि की मानस-भूमि में प्रेम, भावुकता और कल्पना की त्रिवेणी बह कर एक अद्वितीय आकर्षण एवं प्रभविष्णुता उत्पन्न कर देती है । कई छायावादी कवि उस अमूल सौन्दर्य-चेतना के प्रति केवल जिज्ञासा ही प्रकट कर रह गए हैं, परन्तु रहस्यवादी वर्मा जी तथा महादेवी में साम्य है । पन्त जी तो डूब कर इसकी अनुभूति करने में संकोच करते हैं । रामकुमार वर्मा जी की कविताएँ इस कारण हृदय को अधिक स्पर्श कर पाती हैं । कुमारजी द्वारा दी गई रहस्यवाद की परिभाषा के अनुसार “रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल संबंध जोड़ना चाहती है । ऐसी स्थिति में परमात्मा के बिना जीवात्मा की शक्तियों का विकास नहीं होता ।” वे स्वयं एक रहस्यवादी कवि सिद्ध हो चुके हैं । प्रिगल पैटिसन का भी कुछ इसी तरह का मत है—“परमोच्च के साथ प्रत्यक्ष मिलन के पवित्रानन्द की उपलब्धि करने का मानवीय मन का प्रयत्न रहस्यवाद है ।” + ‘अंजलि’ में प्रायः रहस्योन्मुख प्रवृत्तियों में विभाजित कविताओं का संग्रह है । कवि को विश्वास है ‘इस प्रेम का सम्बन्ध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता । इसका फल यह होता है कि परमात्मा के सभी गुण आत्मा में प्रतिविम्बित होने लगते हैं और आत्मा के गुण परमात्मा में ।’

समवेदनशील कवि की अनुभूत विह्वलता पिक के स्वर में उद्बलित हो मार्मिक चोट करती है । ‘अंजलि’ का गीति-साहित्य में शीर्ष स्थान है जिसमें छन्द, मात्रालय आदि के सम्बन्ध में सुस्पष्ट विचार कार्य करते देखे गए हैं—‘यह कविता मानव-जीवन की विवेचना का आध्यात्मिक और कल्पनात्मक प्रदर्शन है और उसके उद्देश्य में एक संगीत का प्रादुर्भाव करने पर छन्द की सार्थकता स्पष्ट हो जाती है । नियमित लय, मात्रा या वर्ण संख्या से संगीत का जितना प्रादुर्भाव हो सकता है उतना गद्य की अनियमित वर्ण संख्या और मात्रा से नहीं ।” कविता संगीत द्वारा जितना हृदय को स्पर्श

+ प्रिगल पैटिसन—दी आईडिया ऑफ गॉड

करती है उतना साधारण वाक्य से नहीं ।'' इसीलिए यदि कविता को हम हृदय-स्पर्शी बनाना चाहते हैं तो छन्द की लय से युक्त कर भावों के प्रकाशन करने का अवसर दें ।' उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट पता चलता है कि वे संगीत, लय और छन्द पर बहुत ध्यान देते हैं । छायावाद स्कूल के सभी कलाकारों की रचनाओं में उक्त तत्त्वों का अपूर्व आग्रह है । डा० रामकुमार वर्मा जी में कोमल और संगीतात्मक शब्दों का चयन महादेवी और पंत का तरह ही है । 'अंजलि' की विराट रूप, परिचय, तिरस्कार आदि कविताएँ रहस्यवादी हैं, यह पूर्ण सत्य है । जीर्ण गृह में परमात्मा के अभाव में आत्मा की तड़पन अंकित है । प्रकृति के विभिन्न उपादानों का उपयोग उचित ढंग से सफलता पूर्वक किया गया है । अभिव्यक्ति के प्रति सजगता कुमार जी में यथेष्ट है । गाम्भीर्य और अलंकार की दृष्टि से भी इस रचना का महत्व आंका जा सकता है ।

'रूप-राशि' (१९३३) भी उपर्युक्त परम्परा की रचना है जिसमें रहस्यात्मक, छायावादी कविताओं का सुन्दर संग्रह है, जो वर्मा जी के शब्दों में 'मेरे हृदय में उत्साह, सुख और आशा की जो वेगमती भावनाएँ अपना लक्ष्य खोजना चाहता हैं, उन्हें अरुण स्थान मिल गया । यही सबसे अधिक शान्ति है— सुख है ।'—('रूप-राशि' की भूमिका) अतः आत्माभिव्यक्ति-परक भावनाओं का चित्र सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया गया है । परन्तु कल्पना-प्राबल्य भी द्रष्टव्य है क्योंकि वर्मा जी का विचार है 'कविता में मुझे कल्पना सबसे अच्छी मालूम होती है । यही एक सूत्र है जिसे पकड़ कर कवि इस ससार से उस स्थान पर चढ़ जाता है, जहाँ उसकी इच्छित भावनाओं के द्वारा एक स्वर्ण-संसार निर्मित रहता है । मैं कल्पना का उपासक हूँ । इसीलिए मेरा 'रूप-राशि' अधिकतर कल्पना से ही निर्मित है ।' स्मरण रहे उस समय वर्मा जी युवक थे और जिस अवस्था में मनुष्य का कल्पना बड़ी प्रिय लगती है । पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी सभी में यह आधारभूत तथ्य देखा जा सकता है । अंग्रेजी का कवि John Keats भी आलोच्य कवि की तरह कल्पना-प्रिय कवि था जिसकी कल्पनाएँ बड़ी आकर्षक और सरस हुआ करती थी । परन्तु यह भी स्मरणीय है कि उनकी कल्पना छिछली और ऊहापोछे से भरी हुई केवल आकाश-कुसुम-सी नहीं वरन् महत्वान्वित, सत्यान्वेषिनी है । हृदय में 'किसी' से मिलन का आकांक्षा का वेगपूर्ण स्रोत है —

आओ, आज स्वर्ग-पृथ्वी-मिलकर हो जावें एक ।

मेरे उर का आज तुम्हारे-उर से हो अभिषेक ॥

विचार और अध्ययन]

सांसारिक आवरण आत्मा को अच्छा नहीं लगता 'हटादो घूँघट-पट इस बार।' स्पष्टतया वह मुक्त मिलनकाक्षी है। कबीर ने आत्मानुभूत सत्य व्यक्त करते हुए कहा था—'घूँघट के पट खोल रे तोहे पीव मिलेंगे।' रवीन्द्र के रहस्यवाद में भी कुछ इसी सत्य का आग्रह है। आत्मा और परमात्मा के मिलन में 'सारी प्रकृति एक रूप की छाया बन गई।'।

शुजा शीर्षक कविता लम्बी और वर्णनात्मक है जिसमें स्वाभाविक गौरव और वीरता के प्रतीक शुजा की प्रशंसा भी है साथ ही ससीम में असीम के समादत की लालसा व्यंजित है—

मेरा भी जीवन लघु-कण

प्रतिबिम्बित करलो इस तन में नभ से लेकर निर्वल तृण।

कवि महादेवी की तरह ('एक मिटने में सौ वरदान') मिटने को पतन सूचक नहीं स्वीकार करता—'पतन-तुम्हारा आज बनेगा इस बसुधा का अभिनन्दन।' साथ ही वह इसी विह्वलता, वेदना को जीवन का वरदान स्वीकार करता है क्योंकि उसे विश्वास है 'मैं तुमसे मिल गया प्रिय, यह है जीवन का अंत।' और महादेवी वर्मा भी मिलन-सुख नहीं चाहती।

'रूप राशि' में दार्शनिक चिन्ता का अन्तर्ध्रुव भी अवश्यमेव परिलक्षित होता है। कवि जीवन की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डालते हुए कहता है 'इन्द्र धनुष सा यह जीवन।' Shakespeare भी कुछ ऐसा ही मानता था—

'We are such stuff as dreams are made on; and our little life is rounded with a sleep.'—(The Tempest)

परन्तु वह क्षणभंगुर होकर भी महत्त्वपूर्ण है—'यह इन्द्र धनुष क्षण भर है, पर है वैभव का सार। काले नश्वर बादल में है जीवन का शृंगार।'।

'ये गजरे तारों वाले' में कल्पना प्राचुर्य है।

'निशीथ' काव्य वर्मा जी की वर्णनात्मक शक्ति का बड़ा आकर्षक रूप लेकर १२ सर्गों में अवतरित हुआ जिसमें निराशा और प्रेम का सम्मिलित रूप सरसता से अभिव्यक्त हुआ है। 'निर्मल' जी के अनुसार यह उनके तब तक के प्राप्त एवं प्रणिित प्रबन्ध काव्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं जिसमें अलंकार भी स्वाभाविक रूप से आते गए हैं। 'निशीथ' की नायिका कमला के मानसिक-मनोभावों का एक चित्र उदाहरणार्थ देखें—

आशा और निराशा लड़ती सम्मुख बिठा अनंग,
हार-जीत का निर्णय करता उसके तन का रंग।

परन्तु प्रबन्ध-शक्ति का यही चरम उत्कर्ष एवं विकास नहीं समझना चाहिये क्योंकि उससे भी महान् शालीनता और उत्कृष्टता से युक्त वर्मा जी का 'एकलव्य' महाकाव्य पाठको के सम्मुख आ रहा है जो महाकाव्य की शक्तिमत्ता के साथ ही कवि की विकसित काव्य-प्रतिभा का सफल Mile Stone (मीलस्तम्भ) रूप धारण करेगा, ऐसी हमारी धारणा है ।

'चित्ररेखा' हिन्दी-साहित्य में अभूतपूर्व कृति है जिसमें रहस्य-वाद की प्रणय-भावना तीव्र रूप में प्रकट हुई है । अंग्रेजी कवि टेनीसन की तरह निश्चय ही वर्मा जी सफल रहस्यवादी कवि स्वीकृत ही चुके हैं । शिव-दान सिंह चौहान का भी इसी प्रकार मत है ।*

'चित्ररेखा' (१९३५) में कल्पना ने अनुभूति का स्थान ग्रहण कर लिया है । जीवन की संघर्षशीलता तथा उम्र की परिपक्वता ने कल्पना से अनुभूति के महत्व को अधिक स्वीकार किया—'मैं पहले कल्पना का उपासक था । मेरी 'रूप-राशि' तो अधिकतर कल्पना से ही निर्मित है । पर अब अनुभूति मुझे कल्पना से अधिक रुचिकर है । अनुभूति में अपनेपन की सारी उमंग प्रवाहित नदी की भाँति एक स्थान पर स्थिर होना नहीं जानती । अन्य साधनों के अभाव में उसके प्रकाशित होने के लिए आँसू की धारा पर्याप्त है । ऐसी अवस्था में अन्तर्जगत अपने को खींचकर करुण-रस की परिधि में ले जाता है और महाकवि भभूति के 'एको रसः कदण्वेव...' अथवा मीरा के 'रैन अँधेरी विरह घेरी, तारा गिणत निस जात' में अपने को समर्पित कर देता है । इसलिए मेरी कविता में भी कहीं-कहीं करुणा का निवास है ।'—(चित्ररेखा-परिचय) इस पुस्तक की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि गीतों को रेखाओं (चित्रों) में सजाया गया है । महादेवी की रचना 'यामा' आदि में यही प्रवृत्ति मूलभूत रूप से कार्य करती दीख पड़ती है । निश्चय ही चित्रों की पृष्ठभूमि या साहचर्य में गीतों की अभिव्यक्ति में एक दृष्टि से आकर्षण की भव्यता होती है, सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है । परन्तु उन चित्रों के अभाव में यदि गीतों के चित्र सजीवता और परिपूर्णता न प्राप्त कर सकें तो वे असफलता की सीमा में परिणत किए जायेंगे, यह पूर्ण सत्य है । स्मरण रहे ऐसा दोष कुछ महादेवी में है, परन्तु डा० रामकुमार में नहीं । चित्रों के अभाव में भी उनके अस्तित्व और भावचित्रों की पुष्टि और रूप प्रत्यक्षीकरण सम्भव

* शिवदान सिंह चौहान—हिन्दी-साहित्य के अस्सी वर्ष

विचार और अध्ययन

है। महादेवी के काव्य में दिए गए चित्र भी क्लिष्टता-नियोजन को कम नहीं कर पाते—जैसे वे स्वयं सकुचा से गए हो।

‘देव, मैं अब भी हूँ अज्ञात ?

एक स्वप्न बन गई-तुम्हारे प्रेम-मिलन की बात।’

उपर्युक्त पद में प्रणय-परक अनुभूति गहराई से व्यंजित हुई है। प्रेयसी के अभाव में जीवन दशन बन गया है—‘मेरी साँस कर रही मेरे जीवन पर-आघात।’ वह अपने लघु जीवन में मिलनातुर हो आमंत्रण के निवेदित-स्वर में कहता है—

‘यह ज्योत्स्ना तो देखो, नभ की बरसी हुई उमंग ,

आत्मा-सी बनकर छूती है मेरा आकुल अंग।

आओ, चुम्बन-सी छोटी है यह जीवन रात।’

प्रस्तुत पद को पाठकों को सूक्ष्मता से परिवेक्षण करना चाहिए। ‘चुम्बन सी छोटी जीवन की रात’ कहना निश्चय ही बड़ी व्यंजक और मार्मिक योजना है। इस छोटे से शब्द-घट में मानों सागर की गहराई और विस्तार फूट रहा है। ‘चित्ररेखा’ में कल्पना का रोचक-रूप पूर्णतया समाप्त नहीं हो गया है। उदाहरणार्थ ‘आज केतकी फूली ! नभ के उज्ज्वल तारों से हो निर्मित जग में झूली’ में उसकी भव्यता अक्षुण्ण है। वर्मा जी ने स्पष्ट शब्दों में ‘चित्ररेखा’ के परिचय में संकेत कर दिया है—‘कलाकार चाहे कवि हो अथवा चित्रकार पहले अपने सौन्दर्य की भावना की तृप्ति करता है। अतएव मेरे इन प्रयासों में—जो गीतिरूप में आपके सामने हैं—सौन्दर्य की भावना अन्य भावनाओं से अधिक स्पष्ट है। ... मेरे इन गीतों में अन्तर्जगत का व्यक्तिगत-भावना है क्योंकि आत्मा की पुकार में संसार की परिस्थितियों की अवहेलना होना अस्वाभाविक नहीं है। ये गीत छोटे-छोटे शब्द-चित्र (Pen Pictures) हैं।’ अंग्रेजी कवि Keats भी सौन्दर्य प्रेमी था; सौन्दर्य की गंगा में अवगाहन उसकी महती योजना थी—Endymion की पंक्तियाँ देखें—

A thing of beauty is a joy for ever:

Its loveliness increases, it will never pass into nothingness.

परन्तु वर्माजी का सौन्दर्य-प्रेम Keats की तरह ऐन्द्रियता, लौकिकता की सीमा में समाहित नहीं। वह अनन्त-सौन्दर्य की साधना है जिसमें बहिर्जगत का विलास और मोद-भावना का प्रश्रम नहीं। ‘यह तुम्हारा हास आया’ में रहस्यमूलक प्रवृत्ति की विवृति है तथा कल्पना का समुचित समीकरण। अतः सौन्दर्य-कल्पना, अनुभूति (भावपक्ष), संगीतात्मकता तथा सफल गीतिकाव्य के

अन्य अपेक्षित तत्वों का समुचित संतुलन है 'चित्ररेखा'। उसे श्रेष्ठतम गीति-काव्यों की कोटि में स्थान सुरक्षित है। उसमें वैयक्तिक वेदना और पीड़ा की प्राणाभिव्यक्ति है। 'मैं भूल गया कठिन राह' का हम इस दृष्टि से मूल्य निर्धारित कर सकते हैं। 'मैं आज बनूँगा जलद-जाल' में आत्मगतता से उद्वुद्ध-चेतना में, प्रेरणामूलक भावमयता के स्फुरण और समर्पण-अर्पण के फलस्वरूप, कल्याणपरता का बीज सन्निहित है 'चित्ररेखा' में करुणा की छाया भी घनी दीख पड़ती है—

‘कैसा वह प्रदेश है, जिसमें एक उषा, वह भी नश्वर है।
उज्ज्वल एक तड़ित है जिसका जीवन भी केवल क्षणभर है।
इस जीवन की व्यथित कल्पना आज समय-गति-सी चंचल है।
नभ से सीमित आज न जाने क्यों मेरा यह स्वर निर्बल है !!’

‘अंजलि’ में दिया गया वक्तव्य पाठको को स्मरण होगा जिसमें वर्माजी ने निराशा का महत्व स्वीकार किया है। ‘कोकिला की यह कोमल पुकार’ में भी करुणा की धारा प्रवहमान है और जो साहित्य-भूमि को अभिसिंचित करती रसमयी बनाती है। ‘मेरा देखो उसे अभिनय’, ‘मैं खोज रहा हूँ कोकिल’ में भी वेदना का मार्मिक स्वर मुखरित है जैसे महादेवी वर्मा के गीतों में देखा जाता है। कवि ने जीवन का परिचय देते हुए अपने ही शब्दों में कहा है—

‘जग कितना भीषण है इसमें, घृणा, वेदना, भीषणमय,
जीवन क्या है ? पीड़ा का सघर्ष और दुख का अभिनय।’
आलोच्य कवि को आगे उसी वेदना और मिटने में आनन्दानुभव होने

लगा है —

‘तो फिर इस सीमित जीवन का दुख भी तो कैसा सुमधुर है।’

* * * *

‘मेरा वियोग का जीवन !

सूनापन ही तो मेरे इस जीवन का है चिर धन।

अंतस्थल में रोता है कितनी पीड़ाओं का धन।’-‘चित्ररेखा’

महादेवी की कविता ‘अपने सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली’ में सूनेपन में ही एक कसक पूर्ण आह्लादमयी अनुभूति है। महादेवी में भी आगे चलकर पीड़ा से प्रेम व्यंजित होने लगा है, उसी तत्त्व धितन में आनन्द का गुंजार होने लगा है। ‘यामा’ आदि में यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। आलोच्य कवि

विचार और अध्ययन]

की सबसे बड़ी विशेषता है कि उसे अन्धकार में भी चिन्मय-शक्ति का प्रकाश यत्रतत्र दीख पड़ता रहा है—आलोक-किरण दीख पड़ती रही है—

‘रजनी के विस्तृत नभ को जब मैं दृग में भर लेता,
एक एक तारे को कितने भाव युक्त कर देता,
उसी समय खद्योत एक आता वातायण द्वारा,
मैं क्या समझू मुझे मिला उज्ज्वल संकेत तुम्हारा ।’

Tennyson भी अन्धकार में अपर शक्ति की अनुभूति से परितृप्त हो उठा था ।

Dark is the world to thou.

Thyself art the reason why,

For is he not all but thou.

That hast, power to feel I am I. — *

परन्तु जीवन की क्षणभंगुरता का ध्यान कवि को सदा है, अतः वह कल्पना के आवरण में सत्य से मुख नहीं मोड़ता ! अन्त में एक शब्द यह अवश्य ही कहा जायगा कि ‘चित्ररेखा’ की प्रारम्भिक रचनाएं जितनी ससक्त हैं उतनी परवर्ती नहीं । वे कुछ तुलना में मंद दीखती हैं । कुछ लोग इसे वर्मा जी का दोष ही स्वीकार करेंगे ।

‘चन्द्र-किरण’ और ‘संकेत’ भी वर्मा जी की उत्कृष्ट काव्य-रचनाएं हैं । ‘चन्द्रकिरण’ सैतीस कविताओं का संग्रह है जिसमें करुण-भावना का प्राधान्य है । कवि के शब्दों में ही ‘उल्लास और करुणा इसमें अपनी चरम सीमा पर पहुँचने का उपक्रम कर रही है ।’ + इसमें भी रहस्यात्मक और प्रकृति-मूलक भावनाओं का उन्मेष है—दिग्दर्शन है ।

‘जागते बीती अँधेरी रात ।

मौन-कारागार में बंदी रही प्रिय बात।’

वसंत श्री, किरण-कण, मधुयामिनी में प्राकृतिक-सौन्दर्य का चित्रण है तो साधना, अनुभूति, जिज्ञासा तथा तुम और मैं मधुरभाव पूर्ण है जिसमें भाषा का साधुर्य तथा परिमार्जित रूप भी आकर्षक और श्लाघनीय है ।

जीवन की साधना और अनुभूति तथा विचार-परिपक्वता के अनुरूप ही कला का सौन्दर्य भी निखरता जाता है; तथैव जीवंत कलाकार की कृति भाव

* टेनीसन—दि हायर पैथीज्म

+ रामकुमार वर्मा—दो शब्द (चन्द्र-किरण)

और कला का संतुलित नियोजन-आयोजन कर शीर्षोन्मुख बनती है और यह प्राणावेष्टित जागरूक कलाकार की महत्ती ग्रहणशील चेतना विराटत्व की अनुष्ठायिका सिद्ध होती है, परिधि-विहीन, उन्मुक्त पंक्ती के व्यापक-व्योम-सदृश विस्तार को स्पर्श करती है, रसोद्रेकिनी आत्मानन्द की उपलब्धि करा अपना अमरत्व-ग्रहण करती है। डा० रामकुमार की विकासोन्मुखी कला के सूक्ष्म-सौन्दर्य का मूल्यांकन इसी ठोस धरातल पर सम्भाव्य है। कवि तो स्पष्ट शब्दों में कहता है—

‘जिसमें न हृदय का स्पंदन है वह भाषा भी क्या भाषा है ?’

‘आकाश-गंगा’ में भी रहस्य-भावना-मूलक, वेदना-पूरित एवं निराशोन्मुखी रचनाओं का सफल संग्रह है। कला-पक्ष की दृष्टि से यह शीर्ष कोटि की रचना है, जो प्रसाद की ‘कामायनी’ और ‘आँसू’ तथा महादेवी के अथाह विरह-सागर-सदृश अभूत पूर्व, अद्वितीय कला सृष्टि है। ‘कामायनी’ से मेरा अर्थ कथा-सूत्रता से नहीं वरन् अन्य काव्योचित अपेक्षित तथ्यों से है। उदाहरणार्थ देखें—

‘आज मेरी गति, तुम्हारी आरती बन जाय !

आरती घूमे कि खिंचता जाय रंजित क्षितिज-धरा,

धूम-सा जल कर भटकता उड़ चले सारा अंधेरा।’

निश्चय ही काव्य-शक्ति के अपूर्व वैभव स्वरूप ही ‘आकाश गंगा’ को स्वीकार किया जायगा। प्रिय-मिलन की आकंठ-प्यास में भी उपासना की साधना का स्वर गुंजरित है, वेदना के आधिक्य में भी याद की लालसा है।

‘तुम न आओगे कभी, फिर भी प्रतीक्षा है तुम्हारी।

बस, तुम्हारी याद है प्रिय, और है यह रात सारी॥’

साधना की अनेकानेक अवस्थाएँ हैं। जब कवि को सन्निध्य, तथा अभेद स्थिति का अनुभव होता है, तो कह उठता है—

‘अपने में जब तुमको पाया

आशा और निराशा का धन, हँस-हँस कर सौ बार लुटाया।’

*

*

*

*

‘मुझ से यह मत कहो कि जीवन आज और कल का संचय है।

यौवन के साथी से मेरा, देखो, युग-युग का परिचय है।’

जब प्रेयसी का अभाव उसे होता है तो मौन करुणा का सम्बल अपेक्षित समझता है—‘मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ।’ क्योंकि उसे

विचार और अध्ययन]

ज्ञात है 'सुख न है संसार में वह दुखों की एक विस्मृति । मध्य में है एक क्षण इस ओर अथ, उस ओर है इति ।' परन्तु वेदना और पीड़ा को वह दीनता का सूचक स्वीकार नहीं करता (विराट के अभाव में उद्धेलित विरह का यह रूप औचित्य पूर्ण दीख पड़ता है)—'विरह के क्षण में मिलन-सा चिर नवीन बने, जीवन न दीन बने ।'

महादेवी और रामकुमार में सबसे बड़ी भिन्नता है कि रामकुमार के रहस्यवाद में वह अपर शक्ति नारी है, प्रियतमा है और महादेवी में पुरुष और यह आरोप स्वाभाविक ही बन पड़ा है । उदाहरणार्थ देखें—'तुम मनोहर गीत-सी । हृदय में संजीवनी-सी, कंठ में नवनीत-सी ।' कवि को क्षण भर ही सही उसका दर्शन और मिलन स्वप्न में होता है—'स्वप्न देखा-बादलों को शशि-किरण से धो रही हो ।' नेरी पहिचान, तुम, काली घटा, स्वर-साधना, मौन करुणा, तुम्हारी याद, साधना संगीत, स्मृति के क्षण, मिलन की बात आदि निश्चय ही बड़ी उत्कृष्ट रचनाएं हैं । कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का उपयोग भी रंगीन कृत्तों से सफलता पूर्वक किया है । बादल में सामयिक करुणा भी अप्रत्यक्ष रूप से मुखरित हो उठी है । प्रेरणा मूलक भावनाओं का भी दिग्दर्शन यद्यत्न होते रहते हैं । इतना कहना अनावश्यक नहीं होगा कि आलोच्य कवि तथा महादेवी में अनेक साम्य और अनेक वैषम्यता है, अतः दोनों का तुलनात्मक अध्ययन बड़ा रोचक विषय होगा । 'आकाश-गंगा' में कहीं-कहीं मात्रा आदि की दृष्टियों से ह्रस्व और दीर्घ के प्रयोग में मनमानी किया गया है ।

अतैव वर्मा जी की सम्पूर्ण कला-कृतियों पर सांगोपांग दृष्टिपात करने पर स्पष्ट रूपेण हम उनमें दो विशिष्ट प्रवृत्तियाँ (१) प्रवन्धात्मक, (२) गीतात्मक देखते हैं । गीति काव्य के वर्ग में 'अर्जलि', 'रूपराशि', 'चित्र-रेखा', 'चन्द्र-किरण' आदि हैं जिसमें (क) प्रकृतिवादी (वर्मा जी के दो शब्दों में प्रकृतिवाद रहस्यवाद की पहली सीढ़ी है), (ख) रहस्यवादी, (ग) झुझावादी मूलक भावनाएँ आप्लावित हैं, जिसमें मिलन की आकुलता, विरह की पीड़ा, आशा-उल्लास, सुख और नैराश्य की लहर निरन्तर उठती ही रहती है । डा० सुधीन्द्र ने भी अपने रहस्यवाद के वर्गीकरण में वर्मा जी को प्रकृति पूरक रहस्यवादी और दार्शनिक रहस्यवादी कोटि में रखा है । * पंत भी प्रकृति पूरक रहस्यवादी हैं और प्रसाद तथा निराला चिन्तन परक रहस्यवादी ।

* डा० सुधीन्द्र—कविता में रहस्यवाद

‘वीर हम्मीर’, ‘चितौड़ की चिता’, सर्ग-वद्ध-कथा-काव्य है और ‘निशीथ’ तथा ‘एकलव्य’ महाकाव्य । एकलव्य महाभारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित नवीनतम रचना है जिसमें उपेक्षित निषाद एकलव्य की सफल कथावस्तु है । जिसमें आत्म-सम्मान के साथ गुरु-भक्ति की चर्चा है । स्मरण रहे आज ‘उपेक्षितों और दलितों के उद्धार का युग है ।’ + रवीन्द्र ने जो आन्दोलन खड़ा किया उसने मधुसूदन, महावीर प्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर आदि की मनोभूमि को प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से मर्म स्पर्श किया है, प्रभावित किया है । तभी तो नवीन मूल्यों पर नवीन चेतना का पृष्ठाधार प्रस्तुत किया जा रहा है । आज जब महाकाव्य की उपयोगिता के सम्मुख प्रश्न वाचक चिह्न लगाया जा रहा है वर्मा जी का स्पष्ट विचार है ‘यदि आज के इस नव-निर्माण के युग में काव्य के किसी रूप की आवश्यकता है, तो वह केवल महाकाव्य है । गीति-काव्य में तो केवल व्यक्तिगत भावनाओं का प्रकर्ष रहता है । महाकाव्य में किसी भी कथा वस्तु द्वारा राष्ट्र के जीवन की प्रमुख आवश्यकताओं को सरस भाषा के माध्यम से प्रतिपादन किया जा सकता है; उसमें जन-ज-वन के लिए मंगलमय संदेश रहता है, जो फुटकर कविताओं में नहीं रह सकता ।’ हमें स्मरण रहे कि ‘निशीथ’ के समय से ही वर्णनात्मक कथा-काव्य की दृष्टि से वर्मा जी अत्यधिक सफल माने जा चुके थे और ‘आकाश-गंगा’ तक गीति-कला-सौन्दर्यपूर्ण निखर उठा है अतः प्रत्येक पाठक को विश्वास है कि दोनों धाराओं से समन्वित तथा संयोजित ‘एकलव्य’ निश्चय ही ‘कामायनी’ और ‘रामायण’—सदृश हिन्दी-जगत् का गौरव होगा, प्रतिनिधि कलाकृति होगी । वर्मा जी से हिन्दी-भाषा और भाषी को बहुत सम्भावनाएं हैं ।

ई० १९५४

—:~:—

‘कामायनी’ की शाश्वत् समस्या

निश्चय ही सामयिक समस्याएं जीवन को आलौकिक-विलोकित करती हैं, उसे (जीवन को) कभी किसी राजपथ से, कभी कंटकाकीर्ण गली से लेजाने को समर्थ रहती हैं। इसी प्रकार कुछ शाश्वत् समस्याएं, युगयुगान्तर से, मानव सृष्टि-के आरम्भ से मानव के सम्मुख उपस्थित रही हैं। उन समस्याओं के समाधान हेतु मनुष्य युग-युग से प्रयत्नवान बना रहा है, यह भी पूर्ण सत्य है। कलाकार, साधारण प्राणी से श्रेष्ठ जीव, मानवता के कल्याणार्थ समुचित पथ के अन्वेषण में सतत् उद्यत रहा है और उसने अपने अनुभवों के आधार पर उनके निराकरण का प्रयत्न किया है।

जयशंकर प्रसाद छायावाद के दृढ़ स्तम्भ होकर भी ‘कामायनी’ में आकर जीवन की शाश्वत् और पूर्ण ठोस समस्या की उपेक्षा नहीं कर सके। रवीन्द्रनाथ के कथनानुसार महाकाव्य में महान् सन्देश, महती योजना अन्तर्हित रहती है और इस दृष्टि से ‘कामायनी’ को निश्चय ही महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित किया जायगा।

महाकाव्य के सम्बन्ध में W. M. Diction के विचार भी द्रष्टव्य हैं—
“वह (महाकाव्य) कोई महान् अथवा महत्वपूर्ण व्यापार हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है और तदनुसार उसके पात्र भी महान् एवं महत्वपूर्ण होते हैं। सम्पूर्ण कृति में एक गरिमा होती है। मानव-जीवन की जितनी विस्तृत भूमिका का उसमें ग्रहण होता है, उतनी ही अधिक सफलता महाकाव्य को मिलती है।”
(English Epic and Heroic Poetry)

“महाकाव्य किसी ऐसे मंडित कथानक या व्यापार के गरिमापूर्ण कथा प्रबन्ध की वह सात्विक अभिव्यक्ति है जो (कथानक या व्यापार) किन्हीं वीर पात्रों और अतिप्राकृत शक्तियों द्वारा सर्वाधिष्ठात्री नियति के नियंत्रण से घटित होता है। महाकाव्य के कथानक में किसी राष्ट्र अथवा समस्त मानवता की राजनैतिक अथवा धार्मिक भावनाओं का सन्निवेश होता है।”—(C.M. Gale, Principles of poetry) और वह महत्वपूर्ण समस्या ‘कामायनी’ की यह है कि मनुष्य प्रकारान्तर से कैसे आनन्द की उपलब्धि कर सकता है कैसे शाश्वत् सत्य का सान्निध्य ग्रहण कर सकता है। कठिन समस्या है—

‘ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की’

इसके लिए मनुष्य चिन्तित होता है (स्मरण रहे इसी क्रम में आदिमानव की कहानी और मनोवैज्ञानिक विकास, मनोवैज्ञानिक क्रिया-प्रतिक्रिया का सजीव-चित्र उपस्थित हो गया है) अभाव चिन्ता का मूल कारण है—

‘हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा ।

हरी-भरी-सी दौड़-भूप, ओ जल-माया की चल रेखा ।’

चिन्ताग्रस्त मनुष्य निराशा की घनीभूत कालिमा से उत्पीड़ित हो कामना करता है—

‘विस्मृते आ, अवसाद घेरले नीरवते बस चुप कर दे;

चेतनता चल जा, जड़ता से आज शून्य मेरा भर दे ।’

भूतकाल में क्षणमात्र के लिए भोग हुआ सुख पीड़ा में शूल बन कर मर्म बेधने लगता है । स्मृतियाँ वेदना के करुण राग का आलाप करने लगती हैं—

‘वह उन्मत्त विलास हुआ क्या ! स्वप्न रहा या छलना थी ।’

चिन्तन-मनन के उपरान्त आत्मा की सुनहली-स्पहली किरणें फूटती हैं जिनका सहारा प्राप्त कर मनुष्य अपने जीवन-पौधों को बचाते हुए साध्य तक पहुँचने का प्रयास करता है । यह प्राकृतिक सत्य है कि यदि चिन्ता के उपरान्त आशा उदित न हो तो जीवन-लीला वहीं समाप्त हो जाय । आशा में जीवन तत्त्व है जैसे निराशा में मृत्यु-तत्त्व । हम अपने सामान्य जीवन में इनका महत्त्व स्पष्ट रूप से देखते हैं । निराशा अगति और अकर्मण्यता का वरदान देती है तो आशा प्रगति और कर्तव्य की प्रेरणा । आशा का स्थिति आती है तो—

‘उषा सुनहली तीर बरसती जय लक्ष्मी-सी उदित हुई,

इधर पराजित काल रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई ।’

उस समय की स्थिति बड़ी मोहक स्थिति होती है । उस काल आशा धीरे से हृत्तन्त्री को सुकोमल करों से भङ्कृत करती हुई स्वरलहरी उद्वेलित करती है—

‘मैं हूँ यह वरदान सदृश क्यों लगा गूँजने कानों में ।

मैं भी कहने लगी ! मैं रहूँ शाश्वत नभ के गानों में ।’

पाठक देखते चलें, मनुष्य की मानसिक चेतना कैसे भिन्न-भिन्न कोटियों से गुजरती है । वह (मनुष्य) आनन्द प्राप्त करेगा, ऐसी धारणा उसके मन में जम जाती है । तब मनुष्य साथी को खोजने लगता है । उसके अन्दर श्रद्धा का उदय होता है । मनुष्य सोचने लगता है—

विचार और अध्ययन]

‘तब नहीं केवल जीवन सत्य करुणा यह क्षणिक दीन अवसाद,
तरल आकांक्षा से है भरा सो रहा आशा का अह्लाद ।’

मनुष्य को प्रेरणा मिलती है कि कर्म में आनन्द-सागर लहराता है—
कृष्ण ने गीता में भी ऐसा ही कहा है ।

‘कर्म का भोग, भोग का कर्म यही जड़ का चेतन आनन्द ।

शक्तिशाली हो विजयी बनो विश्व में गुंज रहा जय गान ।’—यहाँ वह अवस्था है जहाँ मनुष्य अपनी आत्मा की सच्ची वाणी को पहचानने में भटक जाता है । ‘शक्ति’ और ‘विजय’ को सांकीर्ण अर्थ में लेकर अपने भावी जीवन के निर्माण में उद्यमशील होता है । देखिये मनुष्य कैसे दिग्भ्रमित हो जाता है । ‘सब कहते हैं ‘खोलो खोलो छवि देखूंगा जीवन-धन की, आवरण स्वयं बनते जाते हैं भीड़ लग रही दर्शन का ।’

सत्य से मनुष्य दूर होता चला जाता है । कामांध हो मनुष्य अपने ही जाल में फँसता जाता है । काम के सात्विक और महिमा-मण्डित वेद-वर्णितरूप को भूल, वासना की तीव्र धारा में बहने लगता है । कामावस्था में लज्जा के आने पर संयमित अवस्था होती है । लज्जा का परिचय और कार्य सुनें—

‘मैं रति की प्रतिकृत-लज्जा हूँ, मैं शालीनता सिखाती हूँ
मतवाली सुन्दरता पग में, नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ ।’

तब मनुष्य अपने कर्मक्षेत्र में आकर अहंकार और हिंसा से प्रतिश्रुत हो अपनी आत्मा को समझने में भूल करता है । पथ-भ्रष्ट के लिए सुख मृग-तृष्णा-सदृश हो जाता है यह प्रत्येक मनुष्य जानता है । सुख के विपरीत मनुष्य दुःख के दारुण-जाल में फँसने लगता है—वैसी परिस्थिति का बड़ा ही सच्चा चित्र निम्न पंक्तियों में है—

‘भरा कान में कथन काम का, मन में नव अभिलाषा;
लगे सोचने मनु अतिरंजित, उमड़ रही थी आशा ।’

(मनु की कथा के साथ मनु मन और मानव का प्रतीक है, यह हमेशा स्मरण रखें ।) फिर कर्म में लालसा और कामना उद्दाम ईर्ष्या का उदय कर देती है । ईर्ष्या मनुष्य की असहनशीलता का कारण है । मनुष्य अपने ही जाल में फँसता जाता है । ईर्ष्या के परिणाम स्वरूप, भ्रद्धा और हृदय तत्त्व तिरोहित होने से मनुष्य बुद्धि का अनुगामी हो जाता है । यही भ्रमित विचार

उसके लिए अभिशाप बनता है। हिंसा-मूलक प्रवृत्ति का दुष्परिणाम यही होता है—

‘सब कुछ भी हो यदा पास भरा पर दूर रहेगी सदा तुष्टि,
दुख देगी यह संकुचित दृष्टि।’

श्रद्धाविहीन, एकाकी जीवन अभिशाप नहीं तो और क्या है ? मनुष्य बुद्धि के सहयोग से नवीन स्वप्नों को सजाता है। स्वप्न के अतिरेक में मनुष्य आत्मा के साथ अत्याचार कर बैठता है। कामना और लालसा के परिणाम-स्वरूप बुद्धिवादी मनुष्य, श्रद्धा के अभाव में, संघर्ष के तंत्र वेग में पड़ जाता है। तब वह सभी स्वच्छन्द अधिकार चाहने लगता है, ‘मैं शासक, मैं चिर स्वतन्त्र, तुम पर भी मेरा—हो अधिकार असीम, सफल हो जीवन मेरा।’

अपनी इच्छा की तृप्ति न होते देख मनुष्य नैराश्य-भावना से अभिभूत हो किञ्चित् वैराग्य-पथ पर अग्रसर हो जाता है। गलत राह पर जाने पर असफलता, पाड़ा से क्लान्त होना फिर वैराग्य का जागना नैसर्गिक मनोविकार है। कोलाहल और नैराश्य में श्रद्धा-तत्व का पुनः उदय होता है। हृदय तत्व के स्फुरण होते ही श्रद्धा कहती है—

‘जहां मरू ज्वाला धधकती, चातकी कन को तरसती;
उन्हीं जीवन-घाटियों की मैं सरस बरसात रे मन।’

तब मनुष्य को सत्य के दर्शन की चाह होती है। फिर उसे वास्तविक तत्व का दर्शन होता है। यह दर्शन स्थायी अनुभूति का स्वरूप ले रहस्य रूप में परिणत हो जाता है। श्रद्धा के संयोग से मनुष्य रहस्य के अवगुंठन को खोल पाता है, वह समझ जाता है कि इच्छा, क्रिया, ज्ञान के संयोग से ही समानता की अवस्था का आनन्द उपलब्ध कर सकता है। तब मनु पूर्ण आनन्द-मय बन जाता है, समरसता को अपना कर ! आनन्दावस्था में मनुष्य अभेद स्थापित कर लेता है—

‘हम अन्य न और कुटुम्बी हम केवल एक हमीं हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो जिममें कुछ नहीं कमी है।’

अनेक विस्तृत परिस्थितियों के अनुभव के उपरान्त मनुष्य सत्य समझ पाता है—

‘शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है;
जीवन-वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहाँ है।’

मनुष्य आनन्दानुभव करता हुआ उद्घोष करता है—

विचार और अध्ययन]

‘वैसे अभेद सागर में प्राणों का सृष्टि-क्रम है,
सब में धूल मिल कर रसमय रहता यह भाव चरम है ।’

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद जी ने ‘कामायनी’ में एक शाश्वत् समस्या उठाकर उसकी सारी परिस्थितियों से परिचित कराते हुए उसके निराकरण का भी मार्ग बताया है। संसार आनन्द-प्राप्ति के लिए अनवरत प्रयत्नशील होकर भी अपनी अमित भावना के कारण पीड़ा से विकल है। पीड़ा से मुक्ति के लिए समरसता की आवश्यकता है। बुद्धि (ज्ञान), श्रद्धा, कर्म सभी का समन्वय परमावश्यक है। प्रसाद का यह आनन्दवाद भले ही शैविज्म से प्रभावित हो, उसका गूढ़ दर्शन तत्त्वचिन्तन हो, उसका दार्शनिक महत्त्व हो, पर यहाँ हम इतना ही कहना चाहते हैं कि प्रसाद की ‘कामायनी’ में एक मुख्य समस्या है आनन्द-प्राप्ति की। उस साध्य की प्राप्ति के लिए तीनों तत्त्वों के संयोग का प्रयत्न साधनावस्था माना गया है। अतः इस महाकाव्य को जीवन से गहरा सम्बन्धित होने के परिणामस्वरूप रामायण के बाद आधुनिक काव्य में दूसरा सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य उद्घोषित किया जायगा। श्री नन्द दुलारे वाजपेयी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—‘परम्परागत महाकाव्य के सभी लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी ‘कामायनी’ को नये प्रतिनिधि महाकाव्य कहने में हिचक नहीं होती ।’*

ई० १९५३

‘कामायनी’ में सामयिक स्वर

सफल कलाकार शाश्वत् समस्या के साथ ही सामयिक समस्या की किंचित् उपेक्षा नहीं कर सकता, यद्यपि सामयिक समस्याएँ युग के साथ ही समाप्त भी हो जाती हैं तथापि सामाजिक, चेतन प्राणी कलाकार की कृतियों में वे निश्चय रूप से, कुछ न कुछ सीमा में, मुखर हो उठती हैं। निःसन्देह सच्चा कलाकार इतना सजग होता है कि आवेष्टनगत परिव्याप्त चिन्ता-धारा उसकी सूक्ष्म पकड़ से बंचित नहीं होती। वह सम्पूर्ण युग को समग्र रूप से अनुभूत एवं ग्रहण करता है।

जयशंकर प्रसाद उच्च कोटि के कलाकार थे, सच्चे महाकवि थे, फिर उनकी आत्मा क्यों न सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तत्त्वों, भावों तथा परिवेश का अनुभव करती। निराला की वाणी सत्य ही है ‘जो कवि और महाकवि होते हैं वे प्रकृति के हरेक कमरे में प्रवेश करने का जन्मसिद्ध अधिकार लेकर आते हैं।

* नन्द दुलारे वाजपेयी—आधुनिक-साहित्य

प्रकृति को उनपर अविश्वास नहीं। वह उन्हें अपना बहुत ही सञ्चरित और सुशाल बच्चा समझती है, उनसे उसे किसी अनर्थ का भय नहीं।' अब प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कृति 'कामायनी' में हम सामयिक—स्वर का उल्लेख करेंगे।

आधुनिक युग बौद्धिक-प्रधान युग है जब विज्ञान ने जीवन के प्रत्येक स्तर को स्पर्श कर, हमें तार्किक बना डाला है। आज हम अपनी शुष्कता तथा रूढ़ता के कारण मधुरतम अनुभूति नहीं कर पाते। आज चतुर्दिक अवसाद की कालिमा परिव्याप्त है। सम्पूर्ण समाज दुःखी और त्रस्त है। वेदना का अक्षय अभिशाप जीवन में निरन्तर विषाक्त वायुमंडल प्रस्तुत कर रहा है, पीड़ा के अगम वेग का संस्मरण कर रहा है। विश्वास, श्रद्धा, प्रेम के अभाव में संकट कालीन विपन्न स्थिति का उत्पन्न होना अपेक्षित सत्य है—ऐसा 'कामायनी' कार' ही नहीं प्रत्युत् प्रत्येक जागरूक प्राणी स्वीकार करेगा—

‘जीवन सारा बन जाए युद्ध उस रक्त अग्नि की वर्षा में
बह जायँ सभी जो जो भाव शुद्ध अपनी शंकाओं से व्याकुल तुम
अपने ही होकर विरुद्ध अपने को आवृत किये रहो
दिखलाओ निज कृत्रिम स्वरूप बसुधा के समतल पर उन्नत
चलता-फिरता हो दंफ स्तूप हो वर्तमान से वंचित तुम
अपने भविष्य में रहो रुद्ध सारा प्रपंच ही हो अशुद्ध।’

(का० स० इड़ा)

मनुष्य का अहम् स्वार्थ उसे पंकिल पथ पर अग्रसर करा रहा है। कर्तव्यच्युत अधिकार भावना ने उसे मोहाच्छन्न, अज्ञानाभिभूत कर दिया है। वह सोचता है—‘कुछ मेरा हो’ जो ‘राग-भाव संकुचित पूर्णता है अज्ञान मानस जल निधि का क्षुद्रयान।’

मनुष्य स्वयं पूर्ण स्वतंत्रता का आनन्दानुभव करना चाहता है, परन्तु अन्य पर शासन चाहता है। पर को परतंत्रता की कठोर शृंखला में आवद्ध रखने की आकांक्षा करता है, परन्तु उसे ज्ञात नहीं—

‘सब कलुष ढाल कर औरों पर रखते हो अपना अलग तन्त्र,
द्वन्द्वों का उद्गम तो सदैव शाश्वत् रहता वह एक मन्त्र’

अतः काम का शाप है—‘तुमने तो प्राणमयी ज्वाला का प्रणय प्रकाश न

ऐसा 'कामायनी' कार' ही नहीं प्रत्युत् प्रत्येक जागरूक प्राणी स्वीकार करेगा—

‘जीवन सारा बन जाए युद्ध उस रक्त अग्नि की वर्षा में

विचार और अध्यन]

उपर्युक्त कथित संकुचित दृष्टि का परिणाम होता है—

‘सब कुल भी हो यदि पास भरा पर दूर रहेगी सदा दुष्ट,
दुख देगी यह संकुचित दृष्टि ।’

प्रेम जिसे लोगों ने ईश्वर-रूप स्वीकार किया है। उस पावन प्रेम की शक्ति भी अधिकार और शोषण की कलुषित भावनाग्रस्त हो परिणामतः पवित्रता, शालीनता तथा विराटता से किंचित् दूर हो, स्वार्थों से परिपूर्ण हो सद्भावना और सहानुभूति परक पावक स्रोत प्रवहमान नहीं कर पा रहा है। जीवनगत विविध बुद्धि-जाल में मानस उलझ रहा है। तब ऐसी दारुण परिस्थिति का, अवसाद-विषाद का सृजन नैसर्गिक परिणाम है। मनु को ऐसा ही हुआ था—‘वह प्रेम न रह जाये पुनीत

अरने स्वार्थों से आवृत हो मंगल रहस्य सकुचे समीत।

सारा संसृति हो विरह भरी, गाते हो बीते करुण गीत।

मस्तिष्क हृदय के हो विरुद्ध, दोनों में हो सद्भाव नहीं।

रोकर बीते सब वर्तमान क्षण सुन्दर सपना हो अतीत,

पैंगों में भूले हार-जीत।’

—(का० सर्ग इड़ा)

जब मनुष्य हृदय की उपेक्षा कर मात्र अतिशय बुद्धिवाद का प्रश्रय ले जीवन के अन्यतम सुख-आनन्द उपलब्ध करने का सतत प्रयत्नवान होता है—“अवलंब छोड़कर औरों का जब बुद्धिवाद को अपनाया” तो अहम् में, अपनी शारीरिक और बुद्धिगत शक्ति के अभिमान में, व्यभिचारों और अत्याचारों की सीमा में प्रवेश कर जाता है जहाँ सर्वदा कोलाहल है। तब सारा शक्तियाँ विद्रोह कर उठती हैं, संघर्ष छिड़ जाता है। मनुष्य के अन्दर का यह भाव कि ‘मैं चिर बन्धन हीन मृत्यु-सीमा-उल्लंघन करता सतत चलूंगा यह मेरा दृढ़ प्रण’ उसे सत्यानाश कर डालता है। मनुष्य अपनी स्वतंत्रता चाहता है। भ्रान्तिमूलक धारणा का शिकार हो सोचता है—

‘तुम कहती हो विश्व एक लय है, मैं उसमें लीन हो चलूँ ? किन्तु घरा है क्या सुख इसमें’ और —‘मैं शासक, चिर स्वतंत्र, तुम पर भी मेरा हो अधिकार असीम, सफल हो जीवन मेरा।’

—(का० संघर्ष)

मनुष्य इस महा कल्याणप्रद मंत्र को भूल गया है। मनु भी विस्मरण कर बैठे थे—

‘क्यों इतना आतंक ठहर जा ओ गर्वीले !

जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जी ले।’

इस प्रकार (१) कामना और वासना के अतिरेक के परिणाम स्वरूप दुःख और पीड़ा, (२) अतिशय बुद्धिवाद के प्रभय से हृदय तत्त्व का अभाव, श्रद्धा और विश्वास तत्त्व का तिरोहित होना, (३) अन्तर्संघर्ष, प्रचण्ड वाङ्वाग्नि का धधकना, (४) ईर्ष्या और संघर्ष एवं रक्तपात आदि तत्त्वों के चित्रण में सामयिकता की अक्षुण्ण छाप है 'कामायनी' में, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। इसमें प्रसाद जी को कलना का अधिक महारा नहीं लेना पड़ा है क्योंकि विधि दृश्यो को, उत्पीड़क सामयिक परिस्थितियों एवं मनोक्रियाओं को स्वयं कवि ने देखा एवं अनुभव किया है। अतः उक्त सत्त्यों के चित्रण एवं विश्लेषण में प्रसाद जी की शैली सरस तथा अधिक सुस्पष्ट हो गई है।

आज का युग बुद्धि और विज्ञान के चमत्कारिक तीव्र प्रकाश में हृदय एवं भाव की विशिष्ट क्रियाशील शिव-शक्ति को विस्मरण कर बैठा है, अनुपयुक्त समझ बैठा है। जिसके फलस्वरूप स्वार्थान्ध हो संघर्ष के वात्याचक्र में पथ-भ्रष्ट हो अपना हाथ रक्त-रंजित कर रहा है। इसी मार्मिक परिस्थितियों का सिद्धावलोकन कर सियाराम शरण गुप्त ने 'मृत्युञ्जय' में विष-पायी शिव से प्रलय की कामना की है और जनार्दन भा द्विज की कविता में भी इसी तथ्यों का सङ्केत है।

द्वैत भावना के संचरण शीलता से अभिभूत, प्रभावाच्छन्न हो आज का मोहग्रस्त मानव यह नहीं अनुभूति ग्रहण कर पाता—

‘हम अन्य न और कुटुम्बी. हम केवल एक हमी हैं।

तुम सब मेरे अवयव हो, जिसमें कुछ नहीं कमा है।’

और अन्ततोगत्वा हम यह भी स्मरण रखें कि उपर्युक्त तत्त्वों का दिग्दर्शन एवं चित्रण इड़ा, संघर्ष आदि सर्ग में हुआ है और वे ही अधिक सामयिक समस्याओं एवं परिस्थितियों का सतेज स्वर हमारे सम्मुख मफलतापूर्वक सुनाते हैं। यों तो 'निर्वेद' सर्ग भी पराजय एवं पराभव से उत्पन्न मनोविकारों की अवस्था का सजीवता से अंकन करता। प्रसाद ने इन विषाक्त, वातावरण से मुक्ति का मार्ग भी बड़े कौशल से 'समरसता' का प्रतिपादन कर, कलात्मकता से अनुरंजित कर 'कामायनी' को हमारे सम्मुख रखा है।

ई० १९५३

‘कामायनी’ में कला-तत्त्व

‘कामायनी’ आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इलाचन्द्र जोशी के शब्दों में ‘यह पुस्तक विश्व काव्य है। इसमें एक केन्द्रगत मूल विषय पर लिखे जाने के साथ ही इस विराट विश्व के अन्तरतम प्रदेश में निहित चिन्तन-रहस्य की भांकी है। इसमें नाटकीय तत्व भी है।’*

उक्त रचना का दार्शनिक तथा भावपक्ष जितना सबल और सशक्त है, कला-तत्व भी उतना ही प्रशंसनीय और उत्कृष्ट है। यदि किसी कृति का केवल भाव-पक्ष और दार्शनिक पक्ष ही महत्वपूर्ण रहे और उसमें कलापक्ष का अभाव हो तो उत्कृष्ट और प्रभाव-पूर्ण विचार-सूत्रों को पिरोकर भी वह श्रेष्ठ कला-कृति नहीं मानी जायगी। ‘कामायनी’ की सृष्टि शुष्क शैव-दर्शन के आनन्दवाद की प्रशंसा एवं प्रशस्ति के लिए नहीं हुई अपितु कला के माध्यम से सरसता का संचार करते हुए ‘कान्ता सम्मित’ उपदेश देना है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही कहा है, ‘उसमें (कामायनी में) एक दार्शनिक अन्तर्धारा मिलती है, परन्तु वह काव्य की स्वाभाविक भाव-व्यंजना से अभिन्न और तद्रूप होकर आई है।’+ यही मूल प्रवृत्ति है जो किसी दर्शन-शास्त्र और साहित्य के बीच रेखा खींचने में समर्थ होती है। यही आधारभूत तत्व है जिससे पुराण आदि दर्शन शास्त्र ही रहे और ‘रामचरित्र मानस’ कला-सृष्टि। परन्तु पाठक स्मरण रखें कि कला-कृति के पीछे भी सुस्पष्ट और स्वस्थ विचार रहता है, एक संदेश रहता है, परन्तु रससिक्त। रसपूर्ण विचार ऐसे मादक और सरस विचार होते हैं जिन्हें नैसर्गिक ढंग से हृदयंगम किया जा सकता है। रुक्त और शुष्क ज्ञान कडुआ पेय हैं जिसे सभी सहलता से पान नहीं कर सकते। ऋग्वेद, शतपथ, पुराण आदि से मनु का कथा सूत्र लेकर बड़े ही सुन्दर और रोचक ढंग से ‘कामायनी’ में अभिव्यक्त किया गया है। महाकवि गेटे के विश्व प्रख्यात रूपकात्मक नाट्य-काव्य ‘फौस्ट’ में भी कुछ इसी प्रकार का चित्रण मिलता है। फौस्ट भी मनु की तरह महान् अहम्वादी था। परन्तु ‘फौस्ट’ मनुष्य था और ‘कामायनी’ के नायक मनु देवता के अवशिष्ट। डेनिसन के ‘युलिसीज’

* इलाचन्द्र जोशी — साहित्य-सर्जना

+ नन्द दुलारे वाजपेयी — आधुनिक-साहित्य

में भी ज्वालाभय अतृप्त अभिलाषा का बड़ा सजीव चित्रण है। 'मिल्टन' ने भी 'पैरेडाइज लास्ट' में आदम और हौवा के लालसाशक्तिजनित पतन से सारे मानव-समाज पर जो अभिशाप आरोपित कराया है उसका भी कारण आदि-मानव प्रकृति की मोहान्धता है।

'कामायनी' को महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित करते हैं तो महाकाव्य के अनिवार्य कला तत्वों पर दृष्टिपात करना हमारा नितान्त आवश्यक आलोच्य कर्म होगा। हमें स्मरण रहे कि तीव्रानुभूति, मार्मिक व्यञ्जना, रसपरिपारक की दृष्टि से 'कामायनी' सुन्दर है ही। प्रो० रामलाल सिंह, एम०ए० (सागर) और शम्भुनाथ पाण्डेय आदि का कथन भी हमारे विचार की पुष्टि करता है। प्रस्तुत लेख में हम (क) प्रकृति-चित्रण, (ख) रूप-वर्णन (ग) सूक्ष्म मनोभावों का सफत चित्रण, (घ) मगीतात्मकता, (ङ) भाषा-शैली आदि पक्षों पर समुचित दृष्टिपात करेंगे।

हम जानते हैं कि लुथ्यावादियों ने प्रकृति की रम्य भूमियों में विचरण कर प्रकृति से गहरा सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। अतः जयशंकर प्रसाद जी ने आलोच्य कृति में प्रकृति के विभिन्न रूपों का बड़ा ही मधुर एवं मनो-सुगन्धकारी तथा सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। महाकाव्य की परिभाषा देते हुए विश्वनाथ ने लिखा है—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।

सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥

एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।

शृंगार वीर-शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥ आदि—

यह पूर्ण सत्य है कि महाकाव्य परिभाषा का अनुसरण नहीं करते परन्तु परिभाषा ही महाकाव्यों का अनुकरण करती है। अतः सभी महाकाव्यों में परिभाषानुसार सभी लक्षण शायद ही मिलें। परिवेश और आवेष्टन का प्रभाव साहित्य पर पड़ता रहता है जिससे भी काव्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखते रहते हैं। 'कामायनी' के लिए भी उपर्युक्त कथन सत्य ही है; फिर भी इसमें प्रकृति के विविध रूपों का बड़ा सजीव चित्र अंकित है। देखिए, चिन्ता सर्ग के आरम्भ में ही प्रलय के उपरान्त का कैसा मार्मिक चित्र है —

नीरवता-सी शिला चरण से टकराता फिरता पवमान,

नीचे प्रलय सिन्धु लहरों का होता था सकण्ठ अवसान।

विचार और अध्ययन]

उसी तपस्वी-से लम्बे से देवदार दो चार खड़े,
हुए हिम-धवल, जैसे पत्थर बन कर ठिठुरे रहे खड़े ।

शान्त और हिमाच्छादित लम्बे देवदार वृक्षों का कितना सजीव चित्रण है । उसी प्रलयकालीन अवस्था के उपरान्त, भूमि का जल से ऊपर निकलने का कितना प्रभावपूर्ण वर्णन निम्न पंक्तियों में है—

सिन्धु-सेज पर धरा-वधू अब तनिक संकुचित बैठी-सी ।

प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए-सी ऐंटी-सी ।

और आगे—

निकल रही थी मर्म-वेदना, करुणा विकल कहानी-सी ।

वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही हँसती-सी पहचानी-सी ॥

निःसन्देह यह बड़ी ही सूक्ष्म और मार्मिक व्यञ्जना है । यहीं पर हमें डा० देवराज की आलोचना स्मरण हो आती है । देवराज जी दर्शन के विद्वान् हैं । उन्होंने 'कहानी' और 'मर्म-वेदना' का एक साथ प्रयोग अनुचित ठहराया है । मैं सोचता हूँ कि उन्होंने दोनों शब्दों के दार्शनिक पहलू पर सोचा है, परन्तु सर्वसाधारण में प्रचलित और कला की दृष्टि से नहीं ।

प्रलयकाल का चित्र देखें जब भयानक भङ्गावत शिव का ताण्डव नृत्य उपस्थित कर देता है—

लहरें व्योम चूमती उठतीं, चपलाएँ असंख्य नचतीं,

गरल जलद की खड़ा झड़ी में, बूँदें निज संस्मृति रचतीं ।

चपलाएँ उस जलधि, विश्व में, स्वयं चमत्कृत होती थीं ।

ज्यों विराट् वाङ्मय, ज्वालायें, खंड-खंड हो रोती थीं ॥

प्रसाद ने 'कामयानी' में उपाकाल का भी बड़ा भव्य और आकर्षक चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में मुखरित कर दिया है—

उपा सुनहले तीर बरसती जय-लक्ष्मी-सी उदित हुई,

उधर पराजित काल-रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई ।

धीरे धीरे हिम-आच्छादन हटने लगा धरातल से

जगी वनसरतियाँ अलसाईं मुख धोती शीतल जल से ।

उत्तुङ्ग चोटियाँ तुषार-किरीट पहने कितनी लुभावनी लगती हैं—

संध्या घनमाला की सुन्दर ओढ़े रंग-विरंगी छीट,

गगन-चुम्बिनी शैल-श्रेणियाँ पहने हुए तुषार-किरीट ।

चेतन प्रकृति के अन्दर से एक रहस्यमयी सत्ता की मुस्कान और क्रिया-कलापों की अभिव्यक्ति छायावादियों को विशेष प्रिय लगी। उसके प्रति जिज्ञासा का भाव उनके अन्तराल में सर्वदा रहा —

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी रजनी तू किस कोने से—

आती चूम-चूम चढ़ जाती पड़ी हुई किस टोने से।

निश्चय ही निम्नलिखित पदों में प्रकृति के उल्लासपूर्ण चित्र का दर्शन कर सुहृदय और भावुकों का हृदय स्पन्दित हो बैठेगा —

नव नील कुंज हैं भीम रहे कुसुमों की कथा न बद हुई,

है अन्तरिक्ष आमोद भरा हिम कणिका ही मकरंद हुई।

काम सर्ग में इसी प्रकार के उल्लासकारी चित्रण भरे पड़े हैं। संविस्तार प्रकृति-चित्रण की चर्चा यहाँ सम्भव नहीं। अब हम कुछ रूप-सौन्दर्य के उदाहरणों को देखें —

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मधुवन बीच गुलाबी रंग।

* * * *

घिर रहे थे घुंघराले बाल, अंस अवलंबित मुख के पास,

नील धन-शावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास।

रूप-सौन्दर्य अंकन में प्रसाद जी अद्वितीय थे। निश्चय ही उपर्युक्त पदों में श्रद्धा का बड़ा ही हृदयग्राही और मनोमुग्धता की रूप-चित्रित कर दिया है।

कथा-प्रवाह के समुचित निर्वाह के लिए परमावश्यक है कि नाटकीयता और रोचकता पर भी ध्यान दिया जाय। 'कामायनी' में नाटकीयता का उपयोग किया गया है! क्लृप्त, आकुलि का वार्तालाप, श्रद्धा और मनु का वार्तालाप, मनु और इड़ा का वार्तालाप, आदि कथा में रोचकता उत्पन्न करने में सहायक हुए हैं।

'कामायनी' में तुकान्त और सरस पदावलियों के प्रयोग से संगीतत्व सर्वदा अश्रुण्ण रहा है। संगीतात्मकता 'कामायनी' की अपूर्व निधि है।

'तुमुल कोलाहल कलह में मैं हृदय की बात रे मन।' —

यह गीत तो प्रायः सभी जगहों पर सुनने को मिलता है। छायावादी कवियों को संगीत से बड़ा प्रेम था और वे सरस पदावलियों के चुनने में बड़े दक्ष होते थे। प्रसाद जी भी इस कला में पूर्ण सफल थे।

विचार और अध्ययन]

छन्द-विचार भी एक आवश्यक पक्ष है। हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि 'कामायनी' में लगभग १२-१३ छन्दों का उपयोग किया गया है जैसे चिता, आशा, स्वप्न और निर्वेद सर्ग में ताटंक [इसमें प्रधान छन्द त्राटंक ही है] काम और लाजे सर्ग में पादाकुलक वासना में रूपमाला, कर्म में सार, संघर्ष में रोला। साथ ही उन्होंने कई [लगभग तीन-चार] नये छन्दों का प्रयोग किया है। ईर्ष्या सर्ग में मिश्र छन्द तथा ताटंक गुरु में रहस्य सर्ग और इसी प्रकार इड़ा, आनन्द आदि सर्ग में भी अपना छन्द प्रयोग किया है। इड़ा में तो गीतों का सुन्दर संयोजन है। आँसू छन्द [१४- ४ मात्राओं के पश्चात् यति देना] प्रसाद जी को बहुत प्रिय था जिसका उपयोग उन्होंने 'आँसू' काव्य में भी किया था। 'कामायनी' का अन्तिम सर्ग इसी में है। वीर और लावनी का भी उपयोग मिलता है। रामलाल सिंह एम० ए०, साहित्य-रत्न का यह कहना ठीक ही है कि सभी छन्द भावानुरूप हैं और संगीत-तत्त्व की प्रधानता है। नाद सौन्दर्य भी इसके भाव-सौन्दर्य के समान ही रमणीय तथा आकर्षक हो गया है। आयोपान्त तुकान्त छन्द के प्रयुक्त होने के साथ ही महाकाव्य के नियमानुसार सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन कर दिया गया है।

'कामायनी' से अलंकारप्रिय पाठक की भी तुष्टि होगी क्योंकि इसमें अनेक नये-पुराने अलंकारों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। छायावादी कवियों की भाषा प्रायः कोमल, श्रुतिमधुर होती है। प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, जानक वल्लभ शास्त्री सभी भाषा के धनी और कोमल-कान्त शब्दों के प्रयोग में निश्चय ही अद्वितीय हैं। उदाहरण के लिए हम 'कामायनी' के कोई भी स्थल को उठाकर देख सकते हैं। कठिन कल्पना और गूढ़ व्यंजना होने पर भी पढ़ने को जी चाहता है। यह तो पूर्ण सत्य है कि प्रसाद जी के गद्य और पद्य सभी में संस्कृतगर्भित अंश मिल ही जाते हैं। तथापि 'कामायनी' में भी लिङ्ग दोष मिलते हैं जो कवि ने जानकर भावानुकूल कर दिया है। गूढ़ता और अस्पष्टता के लिए छायावाद बदनाम है। 'कामायनी' पर भी यह दोष है। डा० देवराज ने तो इस दोष के कारण उक्त रचना पर अत्यधिक आक्षेप किया है।* ऐसे लोगों का ही उत्तर देते हुए प्रसाद जी ने १९५७ में 'इन्दु' में लिखा था "यह कहें तो अनुचित न होगा कि सौन्दर्य सदैव एक रहस्य है अतएव जहाँ जितनी ही

डा० देवराज की 'छायावाद का पतन' और 'साहित्य-चिन्ता' पुस्तकें देखें।

सुन्दरता होगी, वहाँ उतनी ही अस्पष्टता भी होगी। सौन्दर्य की भाषा में जो अस्पष्टता, संकोच और लज्जा की सहेली हैं, वही साहित्य के प्रगति-विज्ञान में प्रतियोगिता की चिह्न है। परिवर्तन की इस अवस्था पर रोने वाले रोएँ पर रोने की नहीं, मुस्कराने की चीज है।”

कलापत्न के नाना तत्वों पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार यह काव्य उत्तुङ्ग विचार एवं उद्देश्य से अनुप्राणित है उसी प्रकार कलापत्न की दृष्टि से भी सशक्त एवं सफल है। अंग्रेजी-साहित्य में महाकाव्य (Epic) के लिए शैली की शालीनता को अनिवार्य तत्व ठहराया गया है। महाकाव्य के अनेक तत्वों की पूर्णता के कारण भी अनेक विद्वान आलोचकों ने इसे महत्वपूर्ण महाकाव्य घोषित किया है। सुमन जी ने स्पष्ट कहा है— “इसमें विविधता है, पर उस विविधता में भी एकता है। इसमें भाषा गांभीर्य, शैली का परिमार्जन, छन्दों की विविधता, अलंकारों का सुन्दर प्रयोग और रस एवं ध्वनि की सुन्दर पुष्टि तथा अभिव्यक्ति है। काव्य की आत्मा का तेज इसमें है, वरन् काव्य शरीर का ओज, सौष्टव एवं सौन्दर्य भी वर्तमान है।” डा० देवराज ने कहा है कि इसमें बहुत सी पक्तियाँ कमजोर और शिथिल हैं। कमजोरी और शिथिलता प्रतीत होना बहुत कुछ अपने मालमिक विकास तथा पसद पर निर्भर करता है। प्रस्तुत स्थल पर मैं इतना दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि ससार में अभी तक ऐसा कोई महाकाव्य नहीं आया जो सर्वांश में सशक्त और सुन्दर ही हो। और कुछ अशक्त पक्तियों को लेकर ही निश्चित निष्कर्ष देना उपयुक्त भी नहीं। राष्ट्रकवि दिनकर ने ‘रश्मि-रथी’ की भूमिका में सत्य ही कहा है ‘मगर कथा-काव्य का आनन्द खेतों में देशी पद्धति से जई उपजाने के आनन्द के समान है, यानी इस पद्धति से जई के दाने तो मिलते ही हैं कुछ घास और भूसा भी हाथ आता है, कुछ लहलहाती हुई हरियाली देखने का भी सुख प्राप्त होता है और हल चलाने में जो मेहनत पड़ती है, उससे कुछ तन्दुरुस्ती भी बनती है। डा० देवराज ने ‘छायावाद का पतन’ और ‘साहित्य-चिन्ता’ दोनों में ‘कामायनी’ के दोषों पर विचार किया है परन्तु सहानुभूतिपरक ढंग से नहीं, न्यायी और सहिष्णु बन कर नहीं।

ई० १९५३



जानकीवल्लभ शास्त्री का काव्य-सर्वेक्षण

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री हिन्दी-छायावादी काव्य-धारा के प्रमुख कवियों में हैं, ('काव्य ज्योति अरूप का, पर रूप छायावाद'—'रूप औ' अरूप') जिन्होंने संस्कृत के व्यास, वाल्मीकि, कालिदास तथा रवीन्द्र और निराला के प्रभाव को ग्रहण कर भी अपना स्वतंत्र और प्रतिभापूर्ण मौलिक व्यक्तित्व रखा है। निराला के आग्रह से हिन्दी में आकर कला और दर्शन से हिन्दी-साहित्य का किया हुआ शृङ्गार निश्चय ही महत्वपूर्ण है, इलाघनीय है। संस्कृत में सरस काव्य 'काकली' के सृजन की प्रसिद्धि प्राप्त कर रूप औ' अरूप' की व्यक्त-अव्यक्त जगत् की भावानुभूति, मार्मिक दृश्य-विधान को हिन्दी-पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर शास्त्री जी ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। प्रथम कृति द्वारा इतनी स्वीकृति तथा प्रसिद्धि बहुत कम कवियों को प्राप्त हुई है या निकट भविष्य में होगी।

'रूप औ' अरूप' में कहीं दैनिक जीवन की विशृंखलित क्रिया-कलाप, कहीं पीड़ा का मार्मिक उद्वेलित स्वर-निनाद तो कहीं आत्म-चेतना की दृढ़ता तथा उद्वोधात्मक शक्ति-समन्वित मनोराज्य का प्रतिष्ठान है। कहीं संस्कृत-गर्भित-निराला-अभिव्यक्ति-शैली-सा सौन्दर्य, कहीं सरलतम भाषा में दारिद्र्य का सत्य परन्तु व्यङ्गात्मक चित्र, कहीं अभावग्रस्त नैराश्रयग्रस्त विरह-वारिधि आलोड़ित है, कहीं आत्मचेतना का प्रस्फुरण। छायावाद की युग-चेतना, चतुर्दिक् परिव्याप्त दैन्य-हिंसा-क्षोभ की समस्त विशेषताओं को 'रूप औ' अरूप' की छोटी-छोटी रचनाओं में देखा जा सकता है। अभावग्रस्त वेदना के व्यंजित स्वर में आध्यात्मिकता (Sprituality) का सर्वत्र आरोप आत्मावलोकन शक्ति-हास का परिचय देना होगा, (नन्ददुलारे वाजपेयी भी ऐसा ही मानते हैं।) जिस भावना का स्पष्टीकरण 'मेघगीत' में विस्तार के साथ देखा जा सकता है और व्यङ्गात्मक शैली का 'गाथा' में, जो अपनी दिशा में प्रकाश-स्तंभ है। 'रूप औ' अरूप' के 'विश्व तुम्हारी माया,' 'जीवन की छन-छन ममता', 'मैं स्वर हूँ, तू है शब्दाकार' आदि गीत दार्शनिक हैं। डा० रामकुमार वर्मा और महादेवी में जहाँ रहस्य प्रधान है वहाँ निराला और शास्त्री में दर्शन प्रधान है। परन्तु 'तू निष्काम, कामना तेरी नित्य वृद्धि पर, मति मेरी' में रहस्यमूलक-भावना का अभिव्यंजन है। 'जीवन की

ध्रुवतारा री', 'चल रहे सांस के तीक्ष्ण तीर', 'कुछ न होता ताप तो बनता कभी मुझपे न रोते', 'जाग कर मोये', 'बहुत पास मैं रहा तुम्हारे' आदि में दुःख और वेदना पूरी व्यापकता से प्रकट हुई है। 'मैं न चातकी खो दूँ, अब अपनापन खो दूँ?', 'तू मिले वेच दूँ प्राण भी' आदि निश्चय ही उच्चतम कोटि की कला-सृष्टियाँ की हैं। उदाहरणार्थ देखे —

“बहुत पास मैं रहा तुम्हारे इमीलिए पहचान सकेना।

बहुत प्रमाण दिए समता के इसलिये तुम मान सकेना ॥”

प्रस्तुत पुस्तक में प्राकृतिक सौन्दर्य (Natural beauty) का भी बड़ा सुन्दर भरस और मोहक चित्रण है। निश्चय ही पंथ और words worth से कम प्राणवत्ता शास्त्री जी के प्राकृतिक चित्रण में नहीं है। अन्त में प्रो० केमरी के मतानुसार कहा जा सकता है कि 'यदि 'काकली' स्वर संधान है तो 'रूप ओ' 'अरूप' उसकी मूर्च्छना।' शास्त्री जी उन लयावाद्यादियों में नहीं जो जीवनगत विषमता, पीड़ा से करुणाद्रि हाँ मात्र स्वप्न-संसार का प्रयाण करें, प्रत्युत वे समस्त सामाजिक पक्षों पर दृष्टिपात करते हैं और अस्वस्थकर प्रवृत्तियों पर गहरा व्यङ्गपूर्ण चोट करते हैं। ड्रायडन के कथित व्यंग के अन्तर्हित स्वस्थ-मुग़्ध भावना को शास्त्री जी ने बड़े सुलभे ढङ्ग से ग्रहण किया है। 'गाथा' निश्चय ही ऐसा ही प्रयोग है जिसमें सामान्य स्तरों की जीवनाभिभूत कशानियाँ हैं। जब गरीबी से उत्पीड़ित माँ स्वयं पुत्री को वस्त्र का लालसा, जीवन के धने ममत्व से उत्प्रेरित हो परदेशी के निकट जाने को आज्ञा देती है तब पाठकों का मन एक बार निश्चय ही भकभोर उठता है—

“जा, सो जा उनके सङ्ग, उनका हृदय न दुखने पाये,

ला देंगे साड़ी, तेरा तन किमी तरह ढँक जाए ॥”

आज का सामाजिक कवि खुली आँखों से दुनियाँ को देखता है। गरीब कन्याओं की शादी में कितने व्यवधान उपस्थित होते हैं, रसिकता की भावना कितनी निरीहों को चरित्र भ्रष्ट कर देती है, आदि सभी पक्षों का बड़ा तीखा मार्मिक और कटु सत्य चित्र 'गाथा' में चित्रित है। वह नारी को भी आत्म-बोध और चेतावनी देता हुआ कहता है 'रूप मात्र तुम नारी ? नहीं हो पहचानो अपने को।' पूजा के समय गङ्गा चढ़ाती का जो चित्र 'गाथा' में उपस्थित किया गया है वह बड़ा व्यङ्ग्य है और करुणा का सागर उद्वेलित करने वाली योजना है। हरिहरक्षेत्र-मेला का वर्णन भी बड़ा अनूठा

विचार और अध्ययन]

है। 'सब मिलाकर वे मनुष्यता के चित्रकार The Prisonyard की तरह मानवता के विस्तृत रूप को यथार्थ चित्र देना चाहते प्रतीत होते हैं।' स्मरण रहे चासर का प्रसिद्धि में यथार्थ चित्रण (Realistic portraiture) बहुत बड़ा कारण है। भाषा की दृष्टि से नलिन विलोचन शर्मा के शब्दों को कह सकते हैं—“जानकीवल्लभजी की लेखिना के स्पर्श से कविता के लिए त्याज्य विषय ही नहीं, कितने अभिशप्त शब्द भी उद्धार पा गये। जेम्स ज्वायस, लारेंस और जॉन डॉस ने इस सम्बन्ध में जो अपने गद्य में किया है, वही शास्त्री जी ने अपने पद्य में किया।” — (गाथा की भूमिका) निश्चय ही ‘गाथा’ शास्त्री जी के महत्वपूर्ण कला-कौशल और यथार्थ अनुभूति एवं जीवंत दृष्टि चेतना का सरलतम भाषा में प्रतीक है। ‘गाथा’ को प्रयोग और व्यङ्ग-क्षेत्र में शीर्ष स्थान सुरक्षित रहेगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

‘तीर-तरङ्ग’ (१९३८-४३ तक की कुछ रचनाओं का संग्रह) शास्त्री जी के ही शब्दों में—“अन्तरङ्ग की कुछ जड़-चेतन प्रवृत्तियों की प्रतिच्छाया है। .. मेरे जीवन की कठणा क्रम हीनता उसके गीतों में यथा रूप प्रतिबिम्बित हो गयी है; इसलिए यह आश्वासन मुझे अनायास प्राप्त हो सकता है कि ‘तीर-तरङ्ग’ जीवन-संगीत ही है। .. इस संग्रह में भक्ति और अध्यात्म के साथ प्रेम और शृङ्गार के गीत हैं।—(भूमिका)

शास्त्री के ‘तीर-तरङ्ग’ में डा० रामकुमार वर्मा की तरह कहीं मिलनाकांक्षा है, कहीं विरह-मिलन की धूप छ्द्र है। परन्तु जहाँ रामकुमार में सर्वत्र अलौकिक-प्रणय भावना है वहाँ शास्त्रीजी में यत्रतत्र लौकिक-पक्ष सबल हो उठा है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि शास्त्री जी आवेष्टन (Environment) की मनोभूमि को, सामयिक प्रेरणा (Contemporary inspirations) को ग्रहण अवश्यमेव करते हैं। यदि ‘मैं न गगन हूँ, मैं न मही हूँ, जिस नाम से मुझे पुकारो उसी रूप का बना वही हूँ’ में दार्शनिकता परिव्याप्त है तो ‘दो पुलिनो से बँधकर भी कितनी स्वतंत्र, है जीवन-धारा’ में उमङ्ग और तज्जनित मौज की भावना सुखर है। कलापक्षीय महत्व भी ‘रूप ओ’ अरूप’ से ‘तीर-तरङ्ग’ को अधिक है। उदाहरण स्वरूप देखें -

“मैं गाऊँ तेरा मंत्र समझ जग तेरी वाणी कहे, कहे।
मेरी तो कला वही, जिसमें हो तेरा सतत निवास।

मैं गढ़ूँ प्राण प्रतिभा तेरी दुनियाँ पाषाणी कहे, कहे !

वह सुख न कभी भी मिले मुझे जिससे दुख ही होता दूना ।”

उपर्युक्त पंक्तियाँ प्रेम और साधना की गहरी सम्बन्ध-भावना का द्योतक हैं । संगीतात्मकता, सौन्दर्य-अङ्कन, भाषा-सौन्दर्य, भाषा-साधुर्ग आदि दृष्टियों से भी इसका मूल्य आँका जा सकता है । कैसे वन्द रखूँ चल लोचन प्रिय अति सुन्दर हे’ जैसी रचनाएँ शास्त्री जी ही की नहीं बरन् हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं । ‘तार तरंग’ में कुछ मध-परक एवं उद्धोषनात्मक, प्रेरणात्मक, स्वस्थ भावना की प्रतिच्छाया है । ‘बना घोसला पिजड़ा पंत्ती’ में आशा के अरुणिम सूर्य की भव्यता है जो नैराश्य-जनित वातावरण (Despondence environment) में कवि की आशामूलक भावना का द्योतक है । आलोच्य कृति के आधार पर यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि दार्शनिकता की दृष्टि से कवि निराला के समकक्ष हैं ।

‘शिप्रा’ में भी विभिन्न मनोदशाओं और भावनाओं के व्यञ्जक मधुर तिक्त गीत-विभिन्न छन्दों में व्यक्त हैं जिसमें प्रत्येक पद के आरम्भ में परिस्थिति-क्षण विशेष एवं मानसिक वातावरण पर प्रकाश डाला गया है, जिस क्षण अमुक भावना, अनुभूति और प्रेरणा से उद्बलित हो कवि की पेंती लेखनी दोड़ पड़ी है । और वे पृष्ठभूमि स्वरूप उल्लेखित गद्य भी कविता की सरसता, भावुकता और कोमलता की छोटी-छोटी लहर-सहश हैं । स्मरण रहे कालिदास, words worth के प्रकृति-चित्रण का अपूर्व क्षमता और सौन्दर्यपूर्णता ‘शिप्रा’ के प्रकृति-दृश्य-विधान में देखा जा सकता है । निश्चय ही हिन्दी के छायावादी कवि पंत, रामकुमार, और अंचल तथा शास्त्री के प्राकृतिक चित्रण को विश्व-साहित्य में अपना स्थान सुरक्षित रहेगा ।

‘नयन-मन-उन्मादनी, आज कितनी चाँदनी !

छा रहा है दृग में नशीला एक सपना,

आज जिससे अबनि अपनी, गगन अपना,

आसँमा बरसा रहा ज्यों नूर केवल ।’

‘पार्वती के वाग्वाण’, ‘पतझर’, ‘सुमित्रा की शेष स्मृति’ आदि रचनाओं में सामाजिक, वैयक्तिक-व्यथा की प्रखर धारा है जो पाठकों को निश्चय ही मर्मस्पर्श किए बिना नहीं रहती; तो ‘ध्रुव-पद’ में जीवन व्यंजना और अभिव्यक्ति-शैली निराला-सदृश है, सामासिक और संस्कृत-गर्भित है ।

विचार और अध्ययन]

‘किसने बांसुरी बजाई ?

जनम-जनम की पहचानी वह तान कहाँ से आई ?’

निश्चय ही यह बड़ी कलात्मक रचना है जो शास्त्री - साहित्य में गौरव स्वरूपिणी सिद्ध हुई है। निम्न कविता में आधुनिक सघर्षशीलता, कोलाहलमय वातावरण और स्वार्थपरता का बड़ा accurate (यथार्थ) चित्र है—

‘सब अपनी-अपनी कहते हैं ! कोई न किसी की सुनता है,

नाहक कोई सिर धुनता है:—

प्रस्तुत स्थल पर Arnold की निम्न पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं जिसने भौतिकवादी, स्वार्थान्ध वैज्ञानिक और एकांगी कर्म-प्रधान युग का चित्र अंकित करते हुए कवि ने लिखा है—

Yes, while on earth a thousand discords ring,
Man's fitful uproar mingling with him toil,
Still do thy sleepless ministers move on,
Their glorious tasks in silence perfecting.
Still working, blaming still our vain untiring toil,
Labourers that shall not fail, when man is gone.

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है ‘शास्त्री जी संस्कृत के मार्मिक विद्वान हैं। उनकी सहृदयता विद्या की आँच में सूख नहीं गयी है, वक्तिक और भी द्रवित होकर प्रकट हुई है’—(विश्व भारती, शान्ति निकेतन के अप्रैल-जून अंक में) कला के प्रति शास्त्री जी की कितनी जागरूकता है यह ‘शिवा’ की भूमिका से ही पता चल जायगा—‘जीवन के आवेग का अतुल्य अग्रह रखकर भी मैं काव्य में कला-तत्त्व के समुचित समावेश का तीव्र पक्षपाती हूँ...सुन्दर सरणि से सत्य को अभिव्यक्त करना ही कला है। ... कहने का प्रयोजन यह कि कला केवल सौन्दर्य नहीं प्रत्युत् सौन्दर्यमय सत्य का दूसरा नाम है।’

‘शिवा’ के पश्चात् कोमल, मधुर गीतों के संग्रह ‘मेघगीत’ का प्रकाशन भी विकास, परिपक्वता का द्योतक है।

मेघ भारतवर्ष की प्राकृतिक सम्पत्ति है जो आदि मानव से आज तक के प्राणवेष्टित, सहृदय प्राणियों को रस की मन्दाकिनी से अभिसिंचित करता रहा है, उनके कोमलतम हृत्तन्त्री को भङ्कृत करता एवं कला-सृष्टि की भूमि

की उर्वरता बढ़ाता आया है। नैसर्गिक दृश्य सत्य की प्रांजलता से भी हमारा-कवि-समाज युग से अभिभूत एवं अनुप्राणित होता रहा है। मेघ व्यास, वाल्मीकी, कालिदास, रामकुमार वर्मा, तुलसी, मीरा, प्रसाद, निराला, अंचल, पंत सभी को रससिक्त, भावावेष्टित करता रहा है—यह निर्विवाद स्वीकृत सत्य है। वैज्ञानिक वस्तुसत्यान्वेषियों ने कार्य-कारण मूलखलित तत्त्वों की विवेचना का यदाकदा प्रयत्न ही नहीं बरन् विभीषिकावतार कराना चाहा है वहाँ कलाकारों ने अनुभूति को सजग रख कर, आनन्द के प्राणभूत तत्त्वों को अधुण रखने का प्रयास किया है।

प्रत्येक साहित्य में मेघ को लेकर नाना दृश्य-विधान एवं रंगीन कला-चित्र उपस्थित किये गये हैं जो एक साथ हृदय ग्राही और सुन्दर हैं। कालिदास के यत्न का दूत 'मेघ' भले ही वैज्ञानिकों को हास्यास्पद प्रतीत हो परन्तु उममें जाँ आनन्द संचरणशीलता है उसे कोई भी सहृदय व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता। एक ही मेघ को 'आपादस्य प्रथम दिवसे' देख यत्न अपनी प्रेयसी से मिलने को आतुर हो उठा, सूर की गोपिका को "पवस ऋतु प्रथम सुरति करि माधव जू आवैरी" का प्रतीति होती है। विद्यापति की नायिका कामातुर हो कह उठती है, 'मत्त दादुर डाक डाहुक फाटि जायत छुतिआ' और मीरा की व्यथा बढ़ जाती है। उसे केशव ने कालिका रूप समझा और कभी 'देखी राम वरपा ऋतु आई, रोम-रोम दुःख हो आई' कहते हैं। अर्थात् मेघ कलाकार को, मानव की भावभूमि को, विभिन्न प्रकार से स्पर्श करता रहा है। प्रकृति के बीच रहने वाले कवि आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री को मेघ कभी रोमांचित करता है, कभी गूढ़ दर्शन के कठिन अवगुंठन के रहस्य का उद्घाटन करता है तो कभी अन्य रसमय भावों का सृजन करता है निःसन्देह महाकवि निराला की तरह 'मेघगीत' में आलोच्य कवि की विभिन्न मनःस्थितियों का सुन्दर संकलन हुआ है।

मानव जीवन नश्वर है इस लिए कवि को कभी 'बादल चल जीवन की छलना' मालूम पड़ता है 'जिसे संहारे ही समीर के, जल्दी— धारे चलना' है। प्रकृति का बड़ा ही सर्जीव रूप शास्त्री जी ने निम्न पंक्तियों में चित्रित किया है—

जो पत्र-पुटों पर टप-टप टपक-टपक कर
आता जल, बिहगों का दल लपक झपक कर

विचार और अध्ययन]

है उसे पी रहा झुक-झुक, उभक-उभक कर

गले डैने फड़का, सुलभा उलभे पर,

उपर्युक्त पंक्तियों में पक्षियों हास-विलास, उनका अकृतिम सौन्दर्य साकार हो उठा है। सचमुच ऐसी चित्रात्मकता प्रशंनीय है। प्रस्तुत स्थल पर कालिदास की निम्न पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं।

वर्षाकालीन चित्र अंकन करते हुए हमारा कवि कहता है :—

यह हवा बीच से चली सजल मेघों के

ऊदी-ऊदी, इठलाती, खाती भोंके,

इतनी ठण्ढी कि कपूर—तुहिन-छवि छीनी,

भरती सुगन्ध केतक की भीनी भीनी;

मन-भावन मेघ को देख रवि बाबू का भी मन-मथूर नाच उठा था और तब से कह उठे—

‘आवार एसेछे आपाड़, आकाश हेये

आसे वृष्टिर सुवास वातास वेये

एइ पुरातन हृदय आमार आजि

पुलके दुलिया उठिछे आवार वाजि

नूतन मेघेर घनिमार पाने चेये।

मेघ के पीछे भारतीय अध्यात्मवाद का नियम है, परन्तु उसका वैज्ञानिक कारण भी है। शास्त्री जी ने भी शेली की तरह बादल का कलात्मक रूप अक्षुण्ण रखते हुए वैज्ञानिक सत्य की उपेक्षा नहीं की है —

‘रवि-रश्मि-सहारे खिंचा स्वरस सागर का।’

रवीन्द्र भावधारा से छायावाद बहुत अधिक प्रभावित है—इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं।

निराला ने भी गीतिका में इसी प्रकार लिखा है ‘‘बादल के पंखों पर उड़कर सावन की की इयाम परी आई’’ और ‘‘पत बदन पर धानी चुनरी, शव शृंगार लजाते’’ में छायावादी कला और भी स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई है। रवीन्द्र ने भी मेघों की आड़ में प्रियतम की मुस्कान आदि को नाना रूपों में देखा था।

मेघ संयोगावस्था में तो पीयूष की धार बनकर प्रेमी जनों को रससिक्त करता है, वही वियोगावस्था में दारुण परिस्थिति उपस्थित कर

देता है। पावस में जब नायिका का नायक पास नहीं है तब नायिका स्पष्ट कहती है—“सूने घर-आंगन में क्या बरसात सुहाय ।” जब पावस के शृंगार, मेघ उमड़-उमड़ कर बरसा की झड़ी लगाते हैं, उसे मिलन की तीव्र उत्कण्ठा हो आती है—“मेघ के दिन किस तरह कोई बिताये । ... रैन में किस ठौर कोई चैन पाये ।” [स्मरण रहे प्रस्तुत उद्धृत पदों का दूसरा अर्थ भी लिया जा सकता है। परन्तु मुझे यही अर्थ प्रिय है।]

कभी नायिका वर्षा के बादलों को देख प्रियतम के आने की आशा में सहेलियों से कहती है—‘आवो आंगन में, सखि आओ, भूम-भूम, भुक-भुक, टुक गाओ ।’ नायिका को अटल विश्वास है कि ये बादल नायक के यहाँ भी छाये होंगे जिसका प्रेरणा से वर्षाभूत हो कत मेरे पास आ जायगा—“वहाँ भी धिरे होंगे ये धन, वहाँ भी भरा होगा सावन ।” किसी ने ठीक ही कहा है—“मुंच मुंच सलिलं दयानिधे नास्ति नास्ति समयो विलम्बने, अध चातक कुले मृते पुनः वारि वारि धर किं करिष्यसि ?” सचमुच उपर्युक्त पंक्तियों तथा ‘मेघ गीत’ के अन्य पदों में एक विरहिणी वाला का मार्मिक व्यथाओं से आप्लावित सच्चे उद्गार पाठक के दिल पर चोट करते हैं। पावस के बूँदों के साथ पाठक के नेत्रों से भी जलकण टपक पड़ते हैं। ‘गीला ही रहता आँचल यह बादल के दिन री’ में भी व्यथा का स्वर तेज है। जब विरह की उत्ताल उर्मियाँ सयाग के अतल सागर में निमज्जित हो जाती हैं तब गायिका मेघों को निमन्त्रण देती हुई कहती है—‘अब उमड़ो-धुमड़ो धन, मेरे जीवन-धन घर आए !’

सयोगावस्था की शृंगारिक चेष्टाओं की भाँकी ‘धुली केश राशि खुली रहने दे ! मेघ माल होती मालूम उन्हें’—जैसे पदों में देखी जा सकता है।

शास्त्री जी ‘वचन’ की तरह क्षयशील कवि नहीं जो घिलासिला और हाला के मृदु निनाद में अपने को खो देना अपनी महत्ता समझते हों। उनके अन्तराल में कलकल करती बहने वाली मंगल की पवित्र धारा प्रस्तुत पंक्तियों में स्पष्ट हो गई है—“जीवन प्रसू भी पर धन, जीवन बरसाओ ।” पहन ज्योति ज्वाल-माल, तरुण तिमिर छाओ ।” ऋग्वेद के मनीषी ने भी मेघ से प्रार्थना करते हुए कहा था—शंनः कनिकद्रद्वेदः पर्जन्योऽअभिषर्षुत ।

कवि ने प्रतीकार्य लेकर ‘उतर रेत में, आक जवास-भरे खेत में पागल बादल’ में बड़े ही महत्वपूर्ण तथ्य पर प्रकाश डाला है। कवि

विचार और अध्ययन]

आहवान् करता हुआ आगे कहता है—‘शून्य गगन में व्यर्थ मगन मडलाता है’ कवि ने जीवन की सार्थकता, महत्ता, कवि-कर्म का लक्ष्य आंकते हुए महत्त्व बात कह दी है ।

निराला ने भी ‘अनामिका’ में मेघ को अपनी धारा से शीतल करने की कामना की है । प्रत्येक देश अपनी विशेषताओं से पूर्ण है । पूर्व यदि नवीन विचारों का, आदर्श भावों का जन्मदाता रहा तो पश्चिम ध्वंस के लिए प्रसिद्ध रहा । आज की समामायिक राजनैतिक घटनाओं से भी उक्त मत की पुष्टि होती है । कवि बड़े ही स्वाभाविक और सुन्दर ढंग से पूर्व और पश्चिम का तुलनात्मक चित्र आंकते हुए लिखता है—‘पूर्व दिशा में बादल उमड़े, पश्चिम बिजली चमकी !’ और पूर्व पूर्वत् शान्ति उपासक पश्चिम देता धमका ।’ मनुष्य के जीवन में दुःख-सुख अनवरत आते जाते रहते हैं, यह प्राकृतिक साम्यवाद है, जिसका व्यतिरेक मानव की शक्ति से परे है “पथ अनन्त में भटक गया है बादल यही अकेला” में इसी भाव का व्यञ्जना है । परन्तु कवि निराशावादी नहीं, वह तो स्पष्ट कहता है—अंधकार का मार्ग दुःख, भेद सकूँगा मैं यह व्यूह ।’

शास्त्री जी केवल रूपविलास और कल्पना वैभव के कवि नहीं प्रत्युत् उनमें शास्त्रीयता है, चिन्तन-धारा का अन्तस्त्रोत निनादित होता दीख पड़ता है । शास्त्री जी की विविध विशेषताओं पर दृष्टिपात करते हुए हम यह स्पष्ट ही कहेंगे कि नूतन भंगिमाओं का शब्द रूप में चित्रित करना ध्वनिनाद का इतना सुन्दर अंकन करना ‘मेघ-रम्भ में मन्द्र-सान्द्र ध्वनि द्रिम-द्रिम-द्रिम उन्मद मृदग की’ शास्त्री जी जैसे सिद्धहस्त कलाकारों से ही सम्भव है । अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गीति-काव्य के सभी आपेक्षित तत्वों से जैसे गीतात्मकता, भावों का केन्द्रियकरण, संक्षिप्ता आदि से सन्तुलित ‘मेघ गीत’ का रसास्वादन कर कोई भा पाठक स्वाभाविक रूप से सौन्दर्यान्वित हो उठेगा । — सचमुच—

बादल री, बिन्दु-बिन्दु मधु बरसे
तरसे भूतल पागल री !

—जैसी रचनाएँ गीत साहित्य में अलभ्य हैं ।

‘अवन्तिका’ शास्त्री जी की विशिष्ट कृतियों में एक है जिसमें कहीं गूढ़-तम दार्शनिकता, कहीं आधुनिक जीवन की विषमता से क्षुब्ध मानसिक व्यथा,

सहानुभूति, सहजता का उद्रेक एव जीवन के सत्यो का मौलिक आग्रह निवेष्टित भावनाओं की अजस्र गंगा साहित्य-भूमि की शक्तिमत्ता उदघोषित करती हुई प्रणयन कर्ता को सफलतम श्रेष्ठ गीतिकाव्य कारों में स्थान सुरक्षित करती है। 'रूरा ओ' अरुण', 'शिवा', 'मेघगीत', आदि की भावमयता, कल्पना, सौन्दर्य, 'गाथा' की मानसिक दुर्बलियों पर व्यङ्गात्मक आक्षेप-शक्ति तथा 'राधा' महाकाव्य आदि की प्रबन्धात्मक तथा कथात्मक सृजन-शीलता-समन्वित 'अवन्तिका' में निश्चय ही अभूतपूर्व विषय वैविध्यपूर्ण रचनाएँ संग्रहीत हैं। वस्तु-पद्य-कौशल, भाषा आदि की विशदता और विविधता से संयोजित 'निर्भरणी', 'जीना एक कला है' की ऊर्ध्वगामी प्रेषित भावनाओं का संवहन करती जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालती 'बादलो से उलझ, बादलो से सुलझ ताड़ की आड़ से चाँद भाँकता' कहती एक प्रशस्त भावान्वित-पथ की और निरन्तर अग्रसर हो रही है।

‘नीली पाखोवाली आँखों की भुक गयी हिलोर

चाँद उतर आया, लो भूपर उपर उड़ा चकोर।’

ऐसी गीति-कविताएँ निश्चय ही सफलता पर प्रकाश डालने में समर्थ हैं। ओज और माधुर्य का अपूर्व समिश्रण है ‘अवन्तिका’। निम्नलिखित पंक्तियाँ दिनकर के काव्य सा ओज पूर्ण हैं, जो प्रबन्ध प्रवृत्ति के उन्नयन और प्रतिष्ठान की दृष्टि से भी ध्यातव्य हैं—

“कर्ण हूँ क्या कर्म से भी सूत मैं ?

तो कुमाता हो कहीं कि कपूत मैं !

किन्तु ब्राह्मण-देवता, क्यों भूलते,—

पुष्प-पूजा के कदाँ है फूलते ?

जाति पूछी है कर्मा मृगराज से ?

सत्य की सत्ता मिटाते व्याज से ?”

अब तक की प्रकाशित कृतियों के आधार पर शास्त्री जी हिन्दी-साहित्य के महार्थ और गौरव-नक्षत्र स्वीकृत हो चुके हैं। शास्त्री जी में निराला, रामकुमार वर्मा-सदृश्य गद्य (क) कहानी, (ख) आलोचना-शक्ति और पद्य की शास्त्रीनता अन्तर्निवेष्टित है। इनके काव्य में अभी तक तीन शैलियाँ (क) व्यंगात्मक, (ख) प्रबन्धात्मक, (ग) गीति काव्यात्मक व्यवहृत हुई हैं। जिनमें (i) अनुभूति (ii) कल्पना-सौन्दर्य (iii) नैराश्य-जनित व्यथा (iv) प्रेरणामूलक भावना (v) रहस्यात्मकता

चिन्तार और अध्धयन]

(vi) तथा दार्शनिकता आदि तत्त्वों का विशदता से व्यजन, विविध रूपों में, देख सकते हैं ।

महाकाव्य की पूर्ण मौलिकता और उत्तरदायित्व से युक्त 'राधा' महाकाव्य शीघ्र ही प्रकाशित हो हिन्दी-संसार में गौरव स्तम्भ सिद्ध होगा जिसने राधा के शारीरिक पक्ष पर नहीं प्रत्युत् भावना की सिद्धि पर ध्यान केन्द्रित है—

राधिका कोई न नारी एक, भावना वह हृदयहारी एक,

रक्त-मज्जा की नहीं वह देह; राधिका का अर्थ निश्कल नेह !

स्वर्ण-वर्ण जो बनी घन-श्याम, हाय ! राधा है उसी का नाम !

अभी अनेक अभूतपूर्व कृतियाँ शास्त्री जी की अप्रकाशित हैं जिनके प्रकाशन से हिन्द-साहित्य क गौरव की अभिवृद्धि होगी ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है । अन्त में हम उनकी विकास शील सजग प्रतिभा एवं अनुभूति, तथा शालीनता को देखकर यही कामना करेंगे—

पिल्लार जे आशे, तेने डाको जाओ

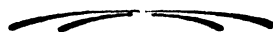
निये जाओ माथ करे

केऊ नाहि आशे एका चले लाओ

महत्तर पथ धरे ।

(रवीन्द्रनाथ)

ई० १९५५



अहिल्याबाई : एक समीक्षा

हिन्दी-साहित्य में सर्वश्री वृन्दावन लाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, किशोरी लाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, यशपाल आदि के ऐतिहासिक उपन्यासों का उसी प्रकार महत्व सुरक्षित है, जिस प्रकार पाश्चात्य-साहित्य में वाल्टर स्कॉट (Walter Scott), रैटक्लिफ (Ratcliffe), अलेक्जेंडर ड्यूमास (Alexander Dumas), विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo), जेम्स (James), किंग्सले (Kingsley) आदि की ऐतिहासिक कृतियों का है। लेकिन यहाँ पर यह कहना अप्रसंगिक न होगा कि राहुल के ऐतिहासिक उपन्यासों की पृष्ठ-भूमि में मार्क्सवादी दृष्टि-चेतना प्रमुख रूप से कार्य करती है, परन्तु वृन्दावन लाल इससे नितान्त भिन्न है। हिन्दी-उपन्यास-सम्राट् श्री वृन्दावन लाल की वस्तुमयता, भावपूर्णता तथा लक्ष्य सभी सन्तुलित एवं संयोजित कला के यथार्थ से मुखरित है। ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं, प्रत्युत् अन्यान्य दृष्टियों से भी आलोच्य कथाकार के साहित्य का महत्व सुरक्षित है। लगभग ६० वर्षों में पचास से अधिक पुस्तकों की सृष्टि कर वर्मा जी ने हिन्दी पाठकों को आश्चर्यान्वित ही नहीं अपितु हिन्दी-साहित्य के गौरवपूर्ण भंडार को अमूल्य निधियों से भर दिया है। प्रस्तुत लेख में हम उनके नवीनतम उपन्यास 'अहिल्याबाई' के मूल्यांकन का प्रयास करेंगे, जिसमें प्रेमचन्द के परिभाषानुरूप अहिल्याबाई का सम्पूर्ण जीवन चित्रित है; यह भगवती चरण वर्मा के 'तीन वर्ष' की तरह अधूरे जीवन-वृत्तपर आधारित नहीं।

वर्मा जी का नवीन उपन्यास 'अहिल्याबाई' पढ़ते समय अनयास आस्ट्रेलिया के कथाकार वैनस पामर की The birth day रचना स्मरण हो आती है। आलोच्य कृति भी जयशंकर 'प्रसाद' के नायिका-प्रधान रूपकों की तरह है, जिसमें एक आदर्श, वीर, कर्तव्यनिष्ठ, विवेकशील हिन्दू नारी का कथा-वस्तु है जिस पर शरीर की छाया की तरह करुणा और बेदना सर्घश छाई रहती है। प्रसाद के नाटक सुखान्त होकर भी करुणा की रागिनी में निमज्जित रहते हैं जिससे पाठकों की आँखें अनायास सजल हो उठती हैं; परन्तु अहिल्याबाई का जीवन-स्रोत ही मानो करुणा, विषाद की

विचार और अध्ययन]

गंगा से निकल कर, जीवन-पर्यन्त कठोर साधना और तपस्यामयी भूमियों से होकर अन्ततोगत्वा अवसाद और पीड़ा के उद्बेलित ज्वारभाटों से परिपूर्ण सागर में विलीन हो जाता है। वह तूफानी नदी की तरह गर्जती और चीत्कार नहीं करती, वरन् शान्त व निश्चल भाव से हृदय में अतृप्त मनो-भावाँ को संयमित किए, वात्सल्य की पुनीत मनोव्यथा को सँजोये रहती है। साधारण कुल में उत्पन्न अहिल्याबाई अपने चातुर्य और कुशाग्रता के प्राबल्य से इतिहास-प्रसिद्ध सूवेदार मल्हारराव होलकर के पुत्र खडेरारव की पत्नी रूप में स्वीकृत होकर महारानी बनती है, परन्तु कर्मठ की तरह जीवन-यापन करने पर भी आदर्श और आध्यात्मिक विचार-धाराओं को प्रश्रय देने पर भी वह पुत्र-हीना, पतिहीना और सर्वहीना हो जाती है। दस-बारह वर्ष की अवस्था में उसका विवाह होता है, फिर लगभग १८ वर्षों तक पति के कठोर व्यवहार से पीड़ित हो २६ वर्ष की अवस्था में विधवा हो जाती है। तत्पश्चात् बयालीस-तैंतालिस वर्ष की अवस्था में उसे अपने पुत्र मालेरारव के देहान्त का कठोर दुःख सहना पड़ता है, फिर लगभग ६२ वर्ष की अवस्था में उसका दौहित्र नत्थू चल बसता है। चार वर्ष पीछे दामाद यशवन्तराव फणसे की मृत्यु होती है और उसकी पुत्री मुक्तावायी सती हो जाती है, फिर भी विपत्तियों और दुखों के मंडराते रहने पर भी वह लोक-सेविका बनी रहती है, राजकार्य से विमुख नहीं होती। लेकिन दुर्भाग्य उसका साथ नहीं छोड़ता। अपने राज्य-विस्तार में वह आदर्श रूप शान्ति तथा आनन्द उत्पन्न न कर सकी, जिसकी उसे तीव्र मनोकामना थी। मल्हार, दूर के सम्बन्धी तुकोती राव के पुत्र, को वह कर्तव्यपरायण सदाचारी नृपति के रूप में देखना चाहती थी; पर वह मल्हार भी कुप्रवृत्तियों से आच्छन्न अपनी पराजय की शृंखला में सर्वदा आवद्ध ही रहा। प्रस्तुत स्थल पर मैथिलीशरण गुप्त की निम्न पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—

अबला जीवन हाय, तुम्हारा यही कहानी !

आँचल में है दूध और आँखों में पानी !!

यहाँ पर मैं यह भी स्पष्ट कह दूँ कि वेन्स पामर का पात्र जहाँ दुःख से दूर भागना चाहता है, दूसरे के जीवन को अपने जीवन-सदृश महत्वपूर्ण नहीं मानता, वहाँ अहिल्याबाई विपरीत तत्वों से निर्मित भारतीय आदर्श नारी का प्रतीक है—जिसमें दृष्टिकोण का अन्तर है, मनोभावों और विचारों का अन्तर है, जो भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रतिफलन है, भारतीय

अध्यात्म-परक प्रवृत्तिमूलक देश का स्वप्न है, जिसे आज बहुत कालोपरान्त विश्व अनेक माध्यम से अपनाना चाह रहा है; और यही हमारी संस्कृति की विजय भी है, ऐसा मैं मानता हूँ। डा० देव (अमृता प्रीतम) का नायक भी अहिल्याबाई की तरह महान् और दिव्य है। निश्चय ही शास्त्रीय दृष्टि से कौशल, सुसंगठन, रोचकता, जिज्ञासा आदि तत्वों की दृष्टि से यह सरल कथा-वस्तु संयोजित कलाकृति है, जो कलाना और इतिहास का रंगीन कूँची से निर्मित हो अपनी मौलिकता का अभिव्यक्तिकरण स्पष्टता कर देती है।

‘अहिल्याबाई’ का जीवन गालमवर्दी के मोर्चा की तरह है, जो परम कर्त्तव्य और परमार्थ की वेदी पर सर्वस्व न्योछावर कर देता है; पर आह तक नहीं करता। वह महार के भ्रष्टाचरण तथा लूट एवं अन्य अराजक तथ्यों से व्यथित होती है, अवसाद से भर उठती है, उसके अन्तराल में वेदना की दिलोरें उठती हैं; परन्तु जन-कल्याणार्थ विषमयी शिव की तरह सबको आत्ममात कर लेती है और उसका सत्य, उसका आदर्श, विजयी होता है। इसीलिए सर जान मात्तकन ने (जो अहिल्याबाई का समकालीन था) लिखा है—

“It is an extraordinary picture, a female without vanity, a bigot without intolerance, a mind imbued with the deepest superstition yet receiving no impression except with what promoted the happiness of those under its impression; a being exercising in the most active and able manner despotic power not merely with sincere humility but under the severest moral restraint that a strict conscience could impose on human action, and all this combined with the greatest indulgence for the weakness and fault of others.”

अहिल्याबाई प्रतीक की नहीं, वरन् विचार को महत्व देती है। जब उसकी मूर्ति की पूजा की जाने लगती है, तो उसे अगर दुःख होता है और वह बोल उठती है—‘कारवारी’ ने मेरे मूर्ति को भी प्रणाम किया होगा! विनय की याद दिलाने के लिये वह प्रतीक खड़ा किया गया था। विचार बिसराया जाने लगा, प्रतीक की पूजा हो उठी। वह आत्म प्रशंसा को हेय समझती है, तभी तो वह, एक कवि की पुस्तक को, जो उसकी प्रशंसा सुनाने आया था, नर्मदा में फेंकवा देती है। वह तो सोचती है—‘कला का

विचार और अध्ययन]

कर्तव्य मानव को ऊपर उठाने का है, गिराने का नहीं है ।' उक्त पुस्तक की भूमिका में लेखक ने स्पष्ट रूपेण उसके प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए लिख। है—'उन्होंने छुटपन में कितना पढ़ा, बड़ी होने पर कितना देखा और सुना, जिस वातावरण से वह घिरी हुई थी, जिन पूर्वाग्रहों में वह बँधी हुई थी; उनके ऊपर बहुधा इतना उठती रही—यही एक बड़ी विस्मय की बात है।' इसी श्रद्धागत मनोभावों ने वर्माजी को उपन्यास लिखने की उत्कट प्रेरणा दी है, ऐसा प्रतीत होता है । निश्चय ही अहिल्याबाई का चरित्र गतिशील कर्मठ, सशक्त, व्यक्तित्व-प्रधान, तथा पूर्ण सफल है, जिसमें मानवता का स्वप्न साकार हो उठा है । अहिल्याबाई का मातृहृदय का उद्गार देख वृन्दावन लाल जी की एक अन्य कृति 'प्रत्यागत' की 'फूलरानी' का स्मरण हो आता है । 'फूलरानी' का मातृ-हृदय स्पष्ट रूप से अहिल्याबाई से अधिक तीव्रता से मुखरित हो उठा है; क्योंकि फूलरानी को केवल पुत्र प्यारा है, उसे समाज और राज्य की जनता के सम्बन्ध में चिन्तन की आवश्यकता नहीं पड़ती । अहिल्याबाई का चरित्र कई स्थलों पर अभिनयात्मक और मुख्यतः विश्लेषणात्मक है । स्वभाविकता उसका प्राण है । सिन्दूरी जैसी दोषग्रस्त, मोहाभिभूति नारी का अहिल्याबाई के संसर्ग से सद्प्रवृत्तियों के वशीभूत होना अहिल्याबाई के चरित्र की महानता का द्योतक है ।

अहिल्याबाई के पश्चात् महार का जीवन मुख्यतः वर्णित है, जो कुत्सित मनोभावोपन्न कुसंगति-ग्रस्त भ्रष्ट युवा है, जो लालच का पुतला है, जो मातुश्री (अहिल्याबाई) तक को प्रवचना के जाल में फाँसकर राजा बनने का स्वप्न देखता है, केवल विलास की परितृप्ति के लिए अहम् के परितोष के लिए । उसका चरित्र ऐसा है कि जिसे पढ़कर उसके प्रति निश्चय ही पाठकों को घृणा उत्पन्न हो उठती है, जो उसके चरित्र की सफलता का द्योतक है । वह अपनी माँ तक को अपमानित कर बैठता है । मातुश्री को भी, जिसे जनता देवी की तरह पूज्य मानती है—धोखा देता है, निरीहों को लूट लेता है, बड़े भाई तथा अन्य बड़ों से अनादर-पूर्वक व्यवहार करता है । वह कुत्सित और पतित व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है । वह अविवेकी है, कामुक है, शरावी और शत-शत दुर्गुणों से आच्छन्न है । वह तत्कालीन भ्रष्ट और दोषग्रस्त राजनैतिक पुरुषों का मूर्त रूप है—साथ ही वह ऐतिहासिक पुरुष भी है । उसके चरित्र को उपन्यास के जीवित पात्र-रूप में परिणत करने में अवश्य ही कुछ घटनाओं को वर्मा जी ने अपनी ओर से सुन्दरता पूर्वक सजा

दिया है। वह राजनीतिज्ञ होकर भी मूर्ख है; चेखव की कहानी 'खुरी' के नायक मीत्या कुल्यारोव की तरह, जो यह नहीं जानता है कि बदनामी का प्रचार कितना बुरा है।

प्रायः ऐतिहासिक उपन्यासों में रोमांस रहता है। स्काट के 'Ivanhoe' में रेबेका (Rebecca) और ब्लैकनाइट (Black Knight) का प्रेम मूलाधार है। Cowpton Rickett ने अपने इतिहास में स्पष्ट ही लिखा है :—
“Strictly Considered, every Historical novelist is a romantic speculation.” वर्माजी के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में भी यह तत्व कार्य करता दीख पड़ता है। आलोच्य कृति में मल्हार राव तथा आनन्दी और सिन्दूरी के कथानक में रोमांस का पुट है।

तुकाजी, काशीराव आदि का चरित्र उतने प्रखर और व्यापक रूप में नहीं चित्रित हो सका है। सम्पूर्ण कथावस्तु मल्हार राव तथा अहिल्याबाई पर ही केन्द्रित होने के कारण अन्य पात्रों का रूप उतना उभर नहीं पाया है। वे ऐतिहासिक पात्र-मात्र ही रह गए हैं। आनन्दी और सिन्दूरी (जिनका नाम लेखक ने परिवर्तित कर दिया है) एक ही चित्र के दो पहलू व्यंजित करते हैं। एक मल्हार से उपेक्षित होने पर प्रतिशोध चाहती है, तो दूसरा उससे प्रेम पाकर भी मुक्ति। दोनों निश्चय ही विचित्र व्यक्तित्व से सयुक्त हैं, जिसमें उनका अपना-अपना व्यक्तित्व पूर्णता से निखरा है।

ऐतिहासिक उपन्यास में वातावरण और तत्सुगीन, सामयिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था के वर्णन का चातुर्य और कौशल निश्चय ही वृन्दावनलाल में अद्भुत है। 'गढ़ कुण्डार' में बुन्देलखण्ड का चित्रण बड़ा स्वाभाविक तथा सफल है, जिसकी प्रशंसा गुलाबराय ने भी की है। आलोच्य-कृति में महाराष्ट्र तथा मध्य भारत की, तत्सुगीन चिन्ता-धाराओं की, वर्माजी ने जैसे पूर्णता से अनुभूति प्राप्त की है। स्मरण रहे ऐतिहासिक कथानकों में वातावरण का भाँ अधिक महत्व है। किशोरलाल गोस्वामी अपनी ऐतिहासिक कृतियों में बहुत दूर तक असफल इसी त्रुटि के कारण रहे। उस युग में कैसे भारत खण्ड-खण्ड में विभक्त हो, विभिन्न मनोवृत्तियों वाले शासकों द्वारा शासित था, कैसी अनेकता, अराजकता का चतुर्दिक् प्रचार था इन सबका बड़ा सफल अंकन है—आलोच्य कृति में। स्काट की कृतियों की सफलता के आधारभूत कारण पर प्रकाश डालते हुए C. Rickett ने लिखा है :—“Scott's success as a historical novelist lay in his sturdy realism.” उसी प्रकार वर्माजी की सफलता का बड़ा

विचार और अध्ययन]

रहस्य यथार्थ-भूमियों का स्वाभाविक अभिव्यक्तिकरण ही है। इसीलिए पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी वर्मा जी की प्रशंसा की है।

कथोपकथन का भी कथानक के विकास, पात्रों की चारित्रिक विशिष्टता के अनुसार व वार्तालाप में पात्रानुकूल वैचित्र्य के साथ ही उसमें स्वाभाविकता, सार्थकता, सजीवता और लाघवता के गुण होना वांछनीय है। अहिल्याबाई में कथोपकथन मानसिक सामाजिक, प्राकृतिक स्थितियों पर प्रकाश डालता है। अतः कथोपकथन की दृष्टि से भी आलोच्य-कृति एक सफल रचना है।

‘अहिल्याबाई’ के विचार और उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए हम कह सकते हैं कि इसमें आदर्शोन्मुख यथार्थ है। प्रेमचन्द पर कई स्थलों पर मात्र उपदेशक होने का दोषारोपण शुक्ल जी ने किया है। उर्मा प्रकार प्रस्तुत कृति में कई स्थलों पर वर्मा जी उपदेशक जैसे बन गए हैं। फिर भी प्रेमचन्द जी से कम ही। इस दृष्टि से प्रत्यागत वर्मा जी की अन्यतम सफल कृति मानी जायगी। प्रस्तुत कृति की भूमिका में वर्मा जी ने इसके लिखने की प्रेरणा के सम्बन्ध में लिखा है - ‘इन्दौर में प्रति वर्ष भाद्रपद कृष्ण, चतुर्दशी के दिन अहिष्योत्सव होता चला आता है। १९५१ के उत्सव का उद्घाटन करने के लिए अहिष्योत्सव समिति ने कृष्णपूर्वक मुझे आमन्त्रित किया। मैंने उस अवसर पर वचन दिया था कि अहिल्याबाई पर कुछ लिखूँगा।

... केवल ऐतिहासिक वर्णन या मनोरंजन मात्र अभीष्ट नहीं है। जीवन-चरित्र की प्रणाली से काम बनता न दीखा तो मैंने उपन्यास लिखने की सोची।’ परन्तु मूल में इससे भी बड़ा सत्य का प्रसार यथार्थवत्-छवियों द्वारा करना लेखक का लक्ष्य रहा है, जिसमें आज और आने वाले के लिए भी तो उसमें कुछ हो।

शली की दृष्टि से ‘प्रत्यागत’, ‘मृगनयनी’ आदि कृतियाँ निश्चय ही ‘अहिल्याबाई’ से आगे हैं, क्योंकि इसमें वर्णात्मिकता अधिक है। यह भी स्वीकृत सत्य है कि कई स्थलों पर इनकी अन्य कृतियों के समान प्रकृति के विभिन्न रूपों का बड़ा ही नैसर्गिक और जीवन्त वर्णन है। इनकी भाषा सरल, स्वाभाविक तथा मुहावरेदार होती है। परन्तु राजा राधिकारमण जी की तरह मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग नहीं है, जिसमें भाषा में चपलता तो नहीं आती परन्तु स्वाभाविकता के कारण सौंदर्य की अभिवृद्धि स्वयं हो जाती है। मैंने अपने एक लेख में स्पष्ट कहा है कि प्रेमचन्द की सफलता में भाषा सरलता अपना महत्वपूर्ण योग देती है। वर्मा जी की भाषा में भी वही गुण वर्तमान है। अन्ततोगत्वा यह निष्कर्ष निःसंकोच दिया जा सकता है कि सभी औपन्यासिक तत्वों पर विचार करने के पश्चात् ‘अहिल्याबाई’ एक सफल उपन्यास है।

ई० १९५६

हिन्दी-कथाकार श्री राजा राधिका रमण

यह पूर्ण सत्य है कि एक ही परिस्थिति में हम अपने वैयक्तिक वैशिष्ट्य के फल-स्वरूप भिन्न-भिन्न क्रिया करते देखे जाते हैं। हमारे सम्मुख एक ही परिस्थिति में आए अनेक मान्य एवं प्रसिद्ध साहित्यिकों के पत्र हैं, जिनका प्रकाशन उनके (साहित्यिकों के) व्यक्तित्व की सफल भाँकी उपस्थित कर सकेगा। सम्भव है इन पत्रों के आधार पर हिन्दी-पाठकों और समालोचकों की कथाकारों के साहित्य-अध्ययन, विचार एवं मनोविश्लेषण में कुछ सहायता प्राप्त हो सके। सर्वप्रथम हम हिन्दी-साहित्य की अन्यतम विभूति श्री राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह की उन चिट्ठियों पर दृष्टिपात करेंगे, जो उन्होंने मुझे उस समय लिखा था, जब मैं 'प्रकाश-स्तम्भ' (प्रतिनिधि कहानियों का संग्रह) का सम्पादन कर रहा था। स्थानाभाव के कारण हम यहाँ उनके तीन पत्रों की ही चर्चा करेंगे।

प्रियवर,

बंरिंग रोड, पटना।

आपका कार्ड चक्कर काटता हुआ मुझे देर से मिला। मैं आजकल कुछ उलझनों में व्यस्त हूँ। यही बजह है कि आपकी सेवा में कहानी जाने में कुछ देर हो गई। आशा है, आप इसके लिए कुछ अन्यथा न मानेंगे।

अच्छा होता कि, अगर आप पढ़ने आते हो, तो मिल लेते। आपके बाते हो जाती, हम जान लेते कि आपकी दिशा क्या है, आपकी सम्भावना क्या है, तो परामर्शदाताओं के साथ हाथ बँटाने में सुविधा हो जाती।

आप जान रहे हैं कि अब हम साठ के परोस में जा चुके और स्वास्थ्य भी वैसा नहीं है। फिर भी जो सेवा बन पड़ेगी उसके लिए हम बराबर तैयार हैं।

आशा है, आप प्रसन्न तथा स्वस्थ होंगे। सस्नेह—राधिका रमण
राजाजी का दूसरा पत्र

प्रियवर,

मैकन गेरा कोठी, आरा १४।५

आपका कार्ड पुनः चक्कर काटता हुआ, मुझे यहाँ मिला। मैं इधर कुछ भ्रंशों में गिरफ्त हूँ। कुछ दिनों में पढ़ने लौट जाने का प्रोग्राम है। अच्छा होता, आप अपनी सुविधा से ही पढ़ने में मिल पाते। आप इतमिना न रखें मुझसे जो कुछ बनेगा, मैं उठा न रखूँगा। जल्दी के लिए ज़मा माँगता हूँ।

सस्नेह - राधिका रमण सिंह

विचार और अध्ययन]

राजाजी का तीसरा पत्र जो सबसे महत्वपूर्ण है -

प्रियवर,

मैकन मेरा कोठ', आरा ७।७

आपका पत्र मुझे परसों मिला । कहा था न, आजकल मैं कुछ भ्रंशटों में गिरपत हूँ । 'बचाऊँ किधर की चोट, उठाऊँ किधर की चोट'—आपके हुक्म की तामील कभी की हो चुकी थी, पर जी में जी हो तब न । अभां कुछ दिन और इन्तजार करना है. आपको यों ही कुछ लिख कर भेज दूँ, अपनी यह लत नहीं । चीज ऐसी चाहिए कि हम दिल उँडेल कहें और आप कान देकर सुनें, लगगी से घास टालने के हम कायल नहीं ।

परसों पटने जाने का का प्रोग्राम है । आशा है, दो हफ्ते में सिर से बोझ उत्तर जायगा तो फिर जैसी मर्जी !

सस्नेह—राधिका रमण सिंह

उदार एवं सुहृदय राजा राधिका रमण जो हिन्दी के सर्वमान्य कथाकार हैं, जिनकी रचनायों से माँ भारती का दिव्य-मन्दिर बहुत काल से समृद्ध होता रहा है, उनके पत्रों के द्वारा उनकी वैयक्तिक विशेषताओं एवं उनकी कलाप्रवृत्ति तथा साहित्यकता पर स्पष्ट रूपेण प्रकाश पड़ता है । सचमुच उनके एक-एक शब्द हृदय पर चोट करते हैं, मर्म को स्पर्श करते हैं । उनके उपन्यास सूरदास, राम-रहीम, सस्कार, सावनी समों, आदि तथा पैसे की घुघनी, गांधी टोपी आदि कहानियाँ मेरे कथन के सफल उदाहरण हैं । मुहावरेदार भाषा एवं शैली के वे कितने धनी हैं, यह प्रत्येक जागरूक पाठक उनके पत्रों को देखकर कह सकते हैं । उनकी पुस्तक आरम्भ करने पर बिना समाप्त किये छोड़ने की जी नहीं चाहता । निःसन्देह यह अपूर्वगुण हिन्दी के कुछ कथाकारों में ही हैं । सचमुच आप राजा हैं, तन से और मन से, हृदय से । 'चीज ऐसी होनी चाहिए कि हम दिल उँडेल कर कहें और आप कान देकर सुनें'—इस पंक्ति से स्वयं सिद्ध होता है कि राजा जी जो कुछ लिखते दिल ऊड़ल कर, पूरी समवेदना और अनुभूति तथा तन्मयता से लिखते हैं । ईमानदारी के आग्रह के परिणामस्वरूप इनकी कला सर्वथा जीवंत हो उठी है । अपनी समग्र अनुभूतिओं और भावनाओं को बिना हिचकिचाहट के संवेदनशील तथा भावुक राजा साहब अपने साहित्य में अभिव्यक्ति कर कर देते हैं । 'लगगी से टालना' वे कला के साथ अन्याय मानते हैं । इसी आधारभूत कारण से उनकी कला इतनी सफल है, उनके अंकित चित्र इतने प्राणपूर्ण हैं जो पाठकों को साधारणीकरण द्वारा रसमग्न कर देते हैं आत्मविभोर कर देते हैं, प्रभावानुन्न कर देते हैं ।

ई० १९५५

गीति-काव्य में 'लाल चूनर'

भारतीय साहित्य में गीतों की एक पुरानी परम्परा है। गीतों की वस्तुतः प्रत्येक देश ने महत्ता स्वीकार की है। इसीलिए तो सामवेद में गीतों का दर्शन होता है। गीतों की महत्ता स्वीकार करते हुए महाकवि Shakespeare कहता है—

In sweet music is such art,
killing care and grief of heart
Fell asleep, a hearing die

'Solitary' Reaper में Wordsworth ने इसी तथ्य पर प्रकाश डाला है। John Freeman की प्रसिद्ध कविता 'Music come' उसी ओर संकेत करती है। हमारे संस्कृत-साहित्य के परम प्रिय कवि भट्टहरि ने तो यहाँ तक कह दिया है—

“साहित्यसंगीत कलाविहीनः

साक्षात् पशु पुच्छ विषाणहीनः ॥

उपर्युक्त पदों से हमें स्पष्ट हो गया कि संगीत का जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। हमारे गीति-काव्य में जैसे नाम से ही स्पष्ट है, गीतात्मकता का प्राधान्य होता है, अन्य उपकरणों के साथ ही। भाव का केन्द्रीयकरण, संक्षेप, लाघव, आत्मानुभूति, आत्माभिव्यक्ति आदि तत्त्व विभिन्न अनुपात में, परन्तु संतुलित रूप में वर्तमान होकर उसकी पूर्णता का द्योतक होंगे। गीति-काव्य दो कोटियों में विभक्त है। प्रथम आत्मगत गीति-काव्य की सृष्टि (आत्म-निवेदन—जैसे विनय-पत्रिका, गीतिका आदि) (ख) द्वितीय श्रेणी के गीति काव्य के पदों में एक आख्यान रहता है जैसे मेघदूत, गीतावली आदि। उपर्युक्त विभाजन प्रणाली की दृष्टि से कविवर अंचलजी की आलोच्य रचना प्रथम कोटि के अन्तर्गत ही स्थान ग्रहण करती है। हम 'लाल चूनर' को उक्त शास्त्रीय कसौटी पर परखने का, मूल्यांकन का, प्रयत्न करेंगे कि वस्तुतः वह किस कोटि का द्रव्य है, किस कोटि की कला-कृति है।

प्राचीन संत-सिद्धों के गीत, विद्यापति, सूर, तुलसी, मीरा, घनानन्द के उच्च कोटि के साहित्यिक गीत इतिहास में महत्वपूर्ण अमर स्थान रखते

प्रिचार और अध्ययन]

हैं। आधुनिक छायावाद की काव्य-परम्परा में महाकवि प्रसाद, निराला, रामकुमार वर्मा, पंत, महादेवी के गीत जितने सौकुमार्य भावपूर्ण एवं काव्यात्मक हैं उस परम्परा से हटकर चलनेवाली परम्परा के प्रतिनिधि कवि सर्वश्री अंचल, बचन, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, सुमन आदि की काव्य-कृतियाँ भी हमारे साहित्य में बहुत ही उच्च कोटि की सफल और अनुभूति पूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकृत हो चुकी हैं। 'लाल चूनर' कविवर अंचल की इसी परम्परा की विनिर्मुक्त नहीं, सफल रचना है। कवि ने अपनी विद्वतापूर्ण भूमिका में स्पष्ट ही उद्धोष किया है—“प्रगतिशीलता और जन क्रान्ति के इस युग में ये रोमांस और सौन्दर्याशक्ति की कविताएँ आलोचकों और पाठकों को कैसे लगेगी, 'किरण बेला' और 'करील' के बाद कवि की यह नई परिणति संतोषप्रद न होते हुए भी उन्मादक प्रवृत्तियों के इस काव्य-दर्शन को लेकर उनके हृदय में कवि के प्रति कौन सी प्रतिक्रिया उत्पन्न करेगी यह सब जानने की एक मानवोचित जिज्ञासा होते हुए भी मेरे मन में यह विश्वास है कि जिस वास्तविकता का रस या रसाभास इन कविताओं में अभिव्यक्त है वह मुझ जैसे वर्गगत और जातिगत संस्कारों में लिप्त सामाजिक इकाई के प्रसंगों से ही सम्बद्ध है।” उक्त कथन से 'लाल चूनर' की समग्र मूल वृत्तियाँ प्रतिबिम्बित हो जाती हैं।

कवि साधारण जनता से कुछ भिन्न अवश्य ही होता है और अनेक दृष्टियों से। प्रस्तुत अवसर पर हमें जार्ज बर्नार्डशा की निम्नपक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—“चाहे मैं जन्म से ही पागल होऊँ या लोगों की अपेक्षा कुछ ज्यादा बुद्धिमान, यह प्रकट है कि यह दुनिया मेरी दुनिया नहीं रही, अपनी कल्पना की दुनिया में ही मैंने अपनापन अनुभव किया और स्वर्गस्थ महान् पुरुषों की संगति में ही सुख पाया।” प्रसाद का स्तुत्य आनन्द-लोक मर्व साधारण के निमित्त प्राण-प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सका। महाकवि तुलसीदास के 'रामराज्य' ने मानस में भले ही अस्तित्व ग्रहण किया परन्तु वह आदर्श राज्य जन साधारण के मध्य स्थापित अब तक न हो पाया; और ये समस्त विशिष्टाएँ कवियों के असाधारणत्व का परिचायकमात्र हैं, ऐसा मैं विश्वास करता हूँ। इसे ही मैं उसकी महानता के द्योतक के रूप में स्वीकार करता हूँ। निर्माण के स्वप्न जो इनमें प्राणभूत तत्व हैं, उनके काव्य में प्रेरणात्मक वृत्तियों के रूप में कार्य करते हैं, वे प्रशंसनीय और श्रद्धापूर्ण हैं। जो कवि, जो नेता इस निर्माण भावना से अभिभूत नहीं होता, वह प्रथम

कोटि का कवि, जनता की वाणी पर सर्वदा विराजने वाला कवि नहीं बन सकता। पूज्य गाँधी और अहिंसा देव बुद्ध को सफलता तथा रामायण की लोक प्रियता, आध्यात्मिक मनोवृत्ति को प्रश्रय देनेवाला भारतीयों के बीच इसी आधारभूत कारण से है। आलोच्य पुस्तक में इस विराट का आयोजन भी पर्याप्त मात्रा में है जिसकी चर्चा आगे होगी। अब हम गीतिकाव्यात्मकता पर विचार करें।—

“दुर्वादल सी मेरी आत्मा पहले तो सकुचायी
किन्तु वशीकृत हो, तम को मैं तब से छोड़ न पाया।
संचित करो लुटा दो चाहे, मैं भगडार तुम्हारा”

उपर्युक्त पंक्तियों में सौन्दर्यपरायण कवि का आत्मानुभूति की तीव्रता का स्पष्ट प्रदर्शन होता है।

“रूप की तुम एक मोहक खान।

धूप दीपक गन्ध का निर्मात्य तुम साकार,
ज्यों कुसुम्मी चाँदनी पहने हरित परिधान
तुम लदी कौमार्य कलियों से लता सुकुमार

और मनुहार शीर्षक कविता में—

मेरावश चलता मैं बन जाता कौमार्य तुम्हारा

आदि में भी सौन्दर्योपासना, अनुभूति की गहराई, भावों की विदग्धता स्पष्ट हैं जि पढ़कर पाठक विस्मृत हो जाता है, तन्मय हो जाता है। सचमुच, सौन्दर्योपासना, सौन्दर्यासक्ति अचल की समस्त काव्य-वृत्तियों की अमूल्य निधि है। अचल का सिद्धान्त कुछ Keats की निम्न पंक्तियों की तरह है—

Happy in beauty life; and everything

A song of love too sweet for earthly lyres

while like how breath, the stars drew in ther panting fires,

हमारा सौन्दर्य प्रेमी कवि, पंत और Wordsworth की तरह व्याप्त नैसर्गिक सौन्दर्य के पीछे भ्रमर की तरह गुंजार करने लगता है, बसंत की आग्नमंजरी की भीगी सुरभित मलयज हवा से उन्मत्त पिक की तरह पुकार उठता है। हमारे कवि का मन वर्षा के मयूर की तरह नाच उठता है, रोम-रोम पुलकित हो उठता है, अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है। और यही परिणति चरम सीमा (climax) है जो हृदयहीन पाठकों को भी मचला देती है, उसके हृदय को गुदगुदा देती है—

विचार और अध्ययन]

‘किसी के रूप की आसक्ति जीवन से नहीं जाती’
जाये भी क्योंकर ? विद्यापति ने तो ठीक ही कहा है—

“जनम अर्वाधि हम रूप निहारनु, नयन ना तिरपित भल
लाख-लाख युग हियाय राखनु, तबू हिया जुड़त ना गल ॥

और वह रूप प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता इसीलिए तो बिहारी की नायिका के चित्र अंकित करने वाले सभी चित्रकार किकर्तव्य विमूढ़ हो गये । सच ही है—

“किसी के दाह का अवसाद गीतों से नहीं जाता
किसी की मदभरी चितवन कलेजे से नहीं जाती”

सौन्दर्य की प्रबलशक्ति को शिव, नारद ने भी स्वीकार किया है ।
Keats का Lycius सौन्दर्य से अभिभूत हो स्वयं को भूल जाता है ।

“तुम्हारे रूप का सित आवरण कितना मुझे शीतल,
तुम्हारे कंठ की मधु बंसरी जलधार सी चंचल
तुम्हारी चितवनों की छाँह मेरी आत्मा उज्ज्वल”

कवि सौन्दर्य की सुन्दर किरणों से अभिभूत हो पुकार उठता है—

“मुझे लगता तुम्हारे सामने मैं सत्य बन जाता,
न मेरी पूर्णता को देखता कोई पहुँच पाता,
मुझे चिर प्यास का अमरत्व जिससे जगमगाता ।”

मानवीय सौन्दर्योपासना के साथ ही अंचल की कविताओं में प्रकृति-सौन्दर्य की भाँकी भी सुन्दर और सजीव है—“मस्त नीबू की महक से विहगियों के प्राण, मधुश्रवा उड़ती तितलियाँ सुन पिकी के गान ।”—
इसी अवसर पर कालिदास की निम्न पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रू विलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः
सर्धः सीरोत्कषणमुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद्भ्रज लघुगतिभूर्य एवोत्तरेणा ।”—

किसी पाश्चात्य कवि ने ठीक ही कहा है कि प्रकृति के अणु-अणु में सौन्दर्य अक्षुण्ण है, जिसके बोध के लिए कवि की उदार आंखों की आवश्यकता है । इसीलिए तो Shelly ने बादल का वह आकर्षक रूप देखा जिसे वैज्ञानिक किसी भी यंत्र से नहीं देख सकते । कविवर अंचल ने मधुमास की बेला में वह उल्लास, वह टीस अनुभव किया जो एक भावुक और हृदय

वाला व्यक्ति ही अनुभव कर सकता है। प्रातःकाल काल का कितना सुन्दर, स्वाभाविक तथा भावपूर्ण चित्र अंकित है इन पंक्तियों में—

“बंद कलिका से भ्रमर निकला

पंखुरियाँ काँपती।

प्रात होते नव किरण के घात होते

स्वप्न से जब जागते जलजात सोते

तुहिन से मधु-लुब्ध श्यामल पंख धोते

अलि पुलक संचार सा निकला

पंखुरियाँ काँपती।”

विरह की तीव्रता देखने के लिए निम्न पंक्तियों को ले सकते हैं—

“मैं पतझड़ के छिन्न बादलों की दुख भरी प्रभाती।

जो मधु ऋतु का स्वप्न मिटाकर स्वयं नहीं मिट पाती।

पर शोलों के झुकतारे सी काँपती मेरी छाती;

मैं अपनी आत्मा की अर्थी लिए चली मुझाई।”

‘पिया बिनु सापिन काली रात’, और ‘निस दिन बरसत नैन हमारे, सदा रहत पावस रितु हम पै जब ते श्याम सिधारे’—से कम मार्मिकता और गहराई उपर्युक्त पंक्तियों में नहीं। परन्तु मैं यहीं पर अपनी धारणा स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि अंचल में नारी सौन्दर्यार्कर्षण की मार्मिक तीव्रता परिव्याप्त है—

“जानता दिला तोड़ने की शक्ति तुममें है भयंकर

जोड़ देती हो वहीं तुम क्षणों में मोम बनकर।”

और इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए भर्तृहरि ने ‘शृंगार-शतक’ में कहा था—

स्मितेन भावेन च लज्जयाभिया पराङ्मुखैर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ॥

वचोभिरीर्ष्याकलाहेन लीलया समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥

सचमुच नारी का कितना सत्य, शिवं, सुन्दरम् रूप अंकित है उपर्युक्त पद्यांश में। अंचल जी ने छायावाद के पलायन की बंजर-भूमि के विपरीत कविता-कामिनी को मानव की अमराई में सुन्दर और स्वस्थ रूप में अधिष्ठित देखा है। वे नारी को सामाजिक वैषम्य पूर्ण आवेष्टन में तेजस्वी रूप में, देखना चाहते हैं।—

“रागिनी सी कामिनी तुम क्रान्ति के नवस्वर निकासो

झोड़कर जादूगरी संघर्ष के ये दिला संभासो।”

विचार और अध्ययन]

युग की यही पुकार है । आज महान् संघर्ष का युग है । आज मनुष्यता का मूल्यांकन एक नवीन दृष्टिकोण से किया जा रहा है । ऐसे अवसर पर 'लाल-चूनर' के पाठकों को प्रगतिशीलता का अभाव नहीं खटकेगा । 'जनगीत', 'तुम्हें सौगंध है कयूर के उन जानिसारों की'; मंजिल आदि कविताएँ जनवादी भावना से ओतप्रोत हैं, जिन्हें वाद की कारा में प्रगतिवाद की संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं । इनमें पूर्ण वेग है—

मेरा आग्रह है समता पर वर्ग रुग्ण मनस्वस्थ बने

भुकी कमर, अवतन मस्तक मानव का फिर से उठे तने ।।'

गांधी-भावना से अभिभूत हो दिनकर ने भी कहा है—

“श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान,

स्नेह-संचित-न्याय पर नव विश्व का निर्माण

एक नर में अन्य का निःशंक दृढ़ विश्वास,

धर्म दीप्त मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहास—

कवि एक ऐसी दुनियाँ, समाज और राष्ट्र का निर्माण चाहता है—

“जहाँ व्यक्ति के अशुभ अहम् के क्रन्दन कभी न सुन पड़ते ;

जिन समाज सम्बन्धों में न विषमता के कण गड़ते”—

और पंत की इस भावना की तरह—

मैं प्रेमी उन्चादशों का,

संस्कृति के स्वर्गिक-स्पर्शों का

जीवन के हर्ष-विमर्षों का—

हमारा आदर्शवादी कवि कह उठता है—

मेरे गीतों में नूतन आदर्शों के अंकुर फूटे ;

नव विचार संघर्षों में संस्कारों के बन्धन टूटे ।”

प्रगति के इस युग में महादेवी की कविताओं में जिसका अभाव खटकता है, यद्यपि जिससे स्वयं ही वे अपने रेखा-चित्रों तथा संस्मरणों में वंचित नहीं रह सकीं, वह दोष अंचल की कविताओं में नहीं । और किंचित् यह अंचल जी की जागरूकता तथा महानता का परिचायक है ।

जिस प्रकार गद्य-क्षेत्र में अंचल जी ने विशिष्ट स्थान ग्रहण कर लिया है इसी प्रकार गीति-काव्य के सभी गुणों से युक्त और पूर्ण संतुलित योजना के परिणाम स्वरूप 'लाल-चूनर' को हिन्दी-साहित्य के किसी भी भेद्युतम गीत-काव्य के बीच रखा जा सकता है । भाषा का सहज प्रवाह, तथा सरलता, इसकी

भाषागत विशेषताएँ हैं। यद्यपि कुछ ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग भी है, परन्तु वह मात्रा तथा माधुर्य की दृष्टि से है। श्री मोहन लाल 'विद्यालंकार' इसे दोष ही मानते हैं। फिर भी इतना सत्य है कि भाषा में माधुर्य और प्रांजलता है। भाषा प्रसाद गुण-युक्त है।

अंचल जी की प्रायः सभी कविताएँ गेय हैं (लाल चूनर की भी)।

“मैं विरह का रात साथी
तुम मिलन के प्रात
* * *
उतर आई हृदय पर क्यों
तुम्हारी शरवती चितवन
* * *
चाँदनी में आज केवल
चाँद की बातें करो।”

मेरे विचार से प्रथम उदाहरण में जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' की कविता 'तुमल कोलाहल कलह में मैं हृदय की बात रे मन' का कुछ प्रभाव प्रतीत होता है। कई स्थलों पर भाव बहुत ही गम्भीर और दर्शन से ओतप्रोत है—

“पर मुझको द्वार अब भवितव्य का मिलता कहीं;
मर्त्य और अमर्त्य मेरे खो गए दोनों यहीं
* * * *
प्रिय तुम्हारे स्पर्श का अभिमान मेरी जीत है;
देह में वंदी चिरन्तन मुक्त वह संगीत है।—

अंततोगत्वा भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही 'लालचूनर' के सशक्त तथा तथा सफल हैं। इसलिये यह श्रेष्ठतम गीति-काव्यों के बीच स्थान ग्रहण करेगा। सचमुच अंचल जी में गीति काव्य का पूर्ण विकास है। आज हिन्दी-साहित्य में श्यामनन्द किशोर, पीयूष, हरीश, हाजीपुरी, नीरज, शकुन्तला, विद्यावति, कृष्णमोहन मधुकर आदि नवयुवक कवियों का बचन, अंचल की परम्परा में सफल योगदान देकर प्रसन्नता होती है। अंचल जी ने थोड़े ही समय में अपनी प्रतिभा का जो परिचय दिया है वह प्रशंसनीय है। आज इनका सफलतम प्रौढ़ कवियों में स्थान है।

ई० १९५४

सूर-साहित्य में दूध, दही और मक्खन

सूर साहित्य में शृंगार, भक्ति और वात्सल्य की त्रिवेणी है, जिसमें अव-गाहन कर भावुक पाठक रसमग्न और तन्मय हो जाते हैं । उनके वात्सल्य-वर्णन में स्वाभाविकता, सुन्दरता और सरसता का अपूर्व सामंजस्य है । इसीलिए डा० रामकुमार वर्मा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं० रामचन्द्र शुक्ल आदि सभी आलोचकों ने उनके बालसाहित्य में सौन्दर्य और गहराई देखकर मुँककंठ से प्रशंसा की है । वियोगी हरि ने स्पष्ट ही लिखा है,— ‘शृंगार और वात्सल्य-रस की जो विमल धाराएं प्रेमावतार सूर ने बहाई, उनमें आज भी विश्व-भारती निमज्जित कर अपने सुख सौभाग्य को सराहती हैं । वात्सल्य वर्णन तो प्रगल्भ और काव्याङ्ग पूर्ण है कि अन्यान्य कवियों की सरस सूक्तियाँ सूर की जूठी जान पड़ती हैं ।’ और यह भी पूर्ण सत्य है कि सूर-साहित्य में दूध, दही और मक्खन का अपूर्व महत्व है ।

मथुरा में देवकी के गर्भ से उत्पन्न होकर भी ब्रज मधुवन में, गोप-गोपियों के बीच, ग्वाल बालों के बीच कृष्ण के जीवन का प्रथम और आनन्द-प्रहर व्यतीत हुआ । ग्वाल-समाज में दही-मक्खन का होना अनिवार्य है । उनका उद्योग धँधा ही गो-पालन होता है और दूध-दही-मक्खन का व्यापार और व्यवसाय ही जीविका का महत्वपूर्ण साधन । महाकवि सूर ने कृष्णा का माखन आदि के प्रति प्रेम व्यंजित कर उस युग के वातावरण के साथ ही गोप-समाज का वातावरण एवं स्थानीय रंग (Local Colour) बड़ी सरलता और सजीवता से चित्रित कर दिया है जिसमें प्रयास कदापि नहीं प्रतीत होता वरन् स्वाभाविकता अधिक है ।

दोउ भैया जँवत माँ आगे ।

पुनि पुनि लै दधि खात कन्हाई और जननि पै मांगे ।

अति मीठो दधि आजु जमायो बलदाऊ तुम देहु ।

देखौं धौं दधि स्वाद आपु लैता पाछे मोहि देहु ।

सचमुच उक्त प्रसंग के फलस्वरूप उनके बाल-साहित्य में अद्भुत प्राणवत्ता और सजीवता मुखरित हो उठी है ।

मक्खन, दूध और दही इतना सुस्वाद और स्वादिष्ट पदार्थ है कि प्रायः सभी बालक रुचि से खाते हैं । कृष्ण का बाल्यकाल में उक्त पदार्थों के

प्रति आकृष्ट होना बाल-सुलभ प्राकृतिक तथ्य है जिसका उचित समावेश कर सूर का आलोच्य प्रसंग अद्वितीय हो उठा है। निश्चय ही यह अन्धे कवि की सूक्ष्म पकड़ ही है। देखिए सुन्दर दयाम रुचि से खाते हुए कितना सुन्दर दीख पड़ते हैं।

सोभित कर नवनीत लिए।

घुटरून चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि लेप किए
सूर के बाल-गोपाल को माखन भाता है,—“माखन बाल गोपालहि भावै।

भूखे छिनु न रहत मनमोहन ताहि बदै जो गहरू लगावै।”
और सदा—“गोपालराय दधि मांगत औ रोटी।

माखन सहित देहि मोरि जननी सुपक सुमंगल रोटी।”
इसीलिये माँ यशोदा उन्हें मक्खन और दही का लोभ देकर जगाती है—

जो माँगहु सो देहु मनोहर यहै बात तेरी खोटी।

प्रातकाल उठि देहुँ कलेऊ बदन सुपरि औ चोटी।

निःसन्देह गोप-जाति के घर का बड़ा यथार्थ चित्र प्रस्तुत पक्तियों में देखा जा सकता है। परिवार में हम सदा ऐसी बातें देखते हैं कि माँ बच्चों को उनकी प्रिय वस्तु देने का लोभ-लालच देकर बुलाती है, जगाती है क्योंकि मनो-वैज्ञानिक सत्य है कि वे (बच्चे) अपने खाने के मृदु लोभ का संवरण करने में असमर्थ होते हैं। देखिए यशोदा किस प्रकार दूध पान कराती है—“कजरी को पय पिअहु लाल तेरी चोटी बदै।” इस पर मोहन कितनी स्वाभाविकता से पूछते हैं—

मेया कबहि बड़ेगी चोटी।

किती बार मोहिं दूध पिअत भई बह अजहुँ है छोटी।

इस प्रकार बालकों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों और क्रीड़ाओं के चित्रण से सूर-साहित्य अनूठा और मर्मस्पर्शी हो गया है।

बालकृष्ण में बालमनोवृत्ति का सुन्दर उदाहरण मिलता है। वे बच्चों के साथ ही भोज-भात करते हैं। वे गोपियों के यहां अकेले अपने स्वार्थ के लिए चोरी नहीं करते। सच तो यह है कि वह चोरी नहीं, विनोद है, मोद है। परस्पर एक साथ मिलकर कार्य करने में आपसी प्रेम तथा कृष्ण की नेतृत्व-शक्ति की भी अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप में व्यंजना हो जाती है। वे अपने बाल-सखाओं के साथ खाते और बर्तन फोड़ने हुए बाल क्रीड़ा करते हैं—

विचार और अध्ययन]

सखा सहित गए माखन चोरी ।

देख्यो श्याम गवाच्छ पंथ ह्वै गोपी एक मथत दही भोरी ।

हेम-मथानी धरी माट तैं माखन हो उतरात ।

आपुन गई कमोरी मांगन हरि पाई तब घात ।

पैठे सखन सहित घर सूने माखन दधि सब खायो ।

छूँछी छाँड़ि मटुकिया दधि की हँसि तब बाहिर आयो ।

पकड़े जाने पर कृष्ण कितना सुन्दर और मनमोहक बहाना बनाते हैं:—

मैया मोरी मैं माखन नहि खायो।

भोर भयो गैयन के पीछे मधुवन मोहि पठायो ।

चार पहर बंशीवट भटक्यो साँझ परे घर आयो ।

और जब माँ उनके मुख पर दही लगा देखती है तो झटपट बोल उठते हैं—

ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ।

देखि तुहीं सीके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो ।

तुहीं निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो ॥

कृष्ण कितने उधमी, नेतागुण से विभूषित, चतुर एवं उदार चेता ये इस पर स्पष्ट रूप से प्रकाश पड़ जाता है। इस प्रकार सूर के गोपाल एक साधारण बच्चे की तरह क्रीड़ा करते हैं, भाव-प्रदर्शित करते हैं जिससे पाठक का मन स्वाभाविक क्रिया से रसाप्लावित हो जाता है। यह सूर में बहुत महत्वपूर्ण गुण है जिसका अभाव निश्चय ही तुलसी में खटकता है। हम यह भी जानते हैं कि संयोग जितना सुखकर होता है वियोग भी उतना ही प्रखर और मर्मन्तिक होता है। गोपियों से इतना प्रेम-सूत्र स्थापित हो जाना एक भूमिका है; इसी पृष्ठभूमि पर विप्रलंभ शृंगार की तीव्रता व्यक्त हो सकी है। और सामूहिक रूप से ग्वाल-समाज के दुख का विस्तृत-पट चित्रित हो सका है।

दही आदि का यह भी महत्वपूर्ण पक्ष है जिसके आधार पर सूर-साहित्य में प्रेम-शृंगार बहुत अशी तक आधारित है। उक्त पदार्थों के बहाने कृष्ण का प्रवेश गोपवालाओं के यहाँ हो जाता है। वे उनके यहाँ दही, माखन और दूध की चोरी के निमित्त बारम्बार आया-जाया करते हैं जिसके परिणाम-स्वरूप कृष्ण और गोपियों के बीच स्वाभाविक सम्बन्ध-सूत्र स्थापित हो जाता है; उभय पक्ष प्रेमाभिभूत हो उठता है। वे कृष्ण के इस नटखट-पन से भरे कार्य से कभी चिढ़ती हैं और यशोदा को उलहना देती हैं:—

[सूर-साहित्य में दूध, दही और मखन

जसोदा कहँ लौ कीजै कानि ?

दिन प्रति कैसे सही परित है दूध दही की हानि ।

अपने या बालक की करनी जो तुम देखौ आनि ।

गोरस खाय खवावै लरिकन भाजन भाजन भानि ।

यदि कभी उन्हें (कृष्ण को) पकड़ लेती है तो उनके रूप पर मुग्ध हो किंकर्तव्य-विमूढावस्था में रह जाती है “भुज गहि लियो कान्ह इक बालक निकरे ब्रज की खोरि । सूरदास ठगि रहि ग्वालिनी मनु हरि लियो अजोरि ।” पुनः उन्हें हरि का इसी बहाने दर्शन देना अच्छा लगने लगता है । जिसके प्रति प्रेम होता है उसे किसी भी बहाने देखने की प्रबल इच्छा का उदय होना, मनोवैज्ञानिक सत्य है—“ब्रज घर घर प्रगटी यह बात ।

दधि माखन चोरी कै लै हरि ग्वाल सखा सँग खात ।

ब्रजबनित यह सुनि मन हरषी सदन हमारे आवैं ।

माखन खात अचानक पावैं भुज भरि उरहि लगावैं ।

मनही मन अभिलाष करत सब हृदय करत यह ध्यान ।

प्रेम का उत्पन्न होना स्वाभाविक क्रिया थी; फिर गोपिकाएँ आपस में सखी से स्पष्ट शब्दों में कहती हैं—“गोपालहि माखन खान दै । सुनु री सखी ! राउ जिनि बोलै बदन दही लपटान दै । गहि बहियाँ हौं लैकै जैहो नयनन तपनि बुझान दै ।” वे कृष्ण के नित्य दर्शन की लालसा से उद्वेलित हो उठती हैं जो उनके हृदय में अंकुरित होने वाले प्रेम की पहचान है, जो निश्चय ही प्रेमी-प्रेमिकाओं की स्वाभाविक-मनोक्रिया है । तब तो उलाहना देने के बहाने नन्द के घर, कृष्ण-दर्शन की प्यासी आँखें पहुँचती हैं:—“ग्वालि उरहने के मिस आई । नन्दनँदन तनु मनु हरि लीनो बिन देखे छिन रह्यो न जाई ।” उस समय उन भोली गोप-बालाओं का प्रेम स्पष्टरूप से प्रकटित हो जाता है जब कान्ह को यशोदा क्रुद्ध हो ऊखल में बाँध देती है । वे गोपीकाएँ ही जो उलाहना देकर बँधवा देती थी अब दुख प्रकट करती हैं और यशोदा को कठोर-हृदया नारी कहती हैं—“तेरो भलो हियो है माई । कमलनयन माखन के कारन बाँधे ऊखल लाई ।”

माखन-चोर की बड़ी प्रसिद्धि हो गई है । राधा जब प्रथम बार कृष्ण से मिलती है तो कितना सुन्दर ढंग से कृष्ण से बातें करती है और प्रसंगवश कहती है कि सुना है कि यहाँ कोई माखन-चोर रहता है—

काहे मो हम ब्रज तन अवति खेलती रहति अपनी पौरी ।

सवन सुनि रहति नंद द्वारा करत रहत माखन दधि-चोरी ।

विचार और अभ्ययन.]

इस प्रकार नित्य की चोरी और सप-दर्शन, मिलन शनैः-शनैः प्रेम के विशाल वृत्त के रूप में परिवर्तित हो जाता है जो स्वाभाविक भावुकता और मनोदशा है। प्रेम का संयोगात्मक रूप इतना सुन्दर और स्वाभाविक रूप में पल्लवित हुआ है जो बाद स्मृति बन उनके हृदय-सागर को और तेजी से मथ डालता है। यह नितान्त कटु सत्य है कि स्मृतियाँ दुख में वेदना के तारों को उसी अनुपात में भङ्ग करती हैं जितना सुखद काल में आरोह-अवरोह का स्वर सन्धान करती हैं।

दही, दूध और मक्खन सर्वाधिक पौष्टिकारक भोज्य पदार्थ हैं जिसमें अपूर्व कोमल भावना भी अन्तर्हित है। दूध पवित्रता और स्वच्छता तथा माखन कोमलता का प्रतीक भी है। सुकुमारता, कोमलता, पवित्रता, सुन्दरता आदि की उपमा भी उक्त पदार्थों से दी जाती है। साथ ही माखन नवनीत आदि शब्द भी कोमल एवं अत्यन्त श्रुति मधुर हैं जिसे प्रत्येक जागरूक पाठक स्वीकार करेगा। अतः सूरदास जब जीवन के कोमलतम काल का वर्णन करते तो उसे कैसे विस्मरण करते। भारतीयता का प्रभाव एवं कृष्ण की सुकुमारता तथा कलाकार की भावुकता तथा आभीरोचित वातावरण ने उन्हें ऐसा करने को बाध्य नहीं, आग्रह किया जिसका निर्वोह आवश्यक था। प्रस्तुत कथन में बहुत बड़ा सत्य है जिसकी उयेक्षा हम नहीं कर सकते और इस आधारभूत कारण पर भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूर को उक्त वस्तुएँ अत्यधिक प्रिय थीं।

विकास के प्रारम्भिक काल में मनुष्य Pastoral Age (चारागाह) में था जहाँ वह पशु-पक्षियों के साथ चारागाह की जिन्दगी बड़ी रंगीन स्वप्नों से काटता था, नैसर्गिक दृश्यों के मध्य बैठकर। हम प्रत्येक साहित्य को देखें pastoral colour देने से रोचकता, सुभाषनापन, मनोमनमुग्धकारिता, सरसता तथा आकर्षण की अभिवृद्धि हो जाती है। इस तथ्य से भी सूर की कविता आकर्षक हो गई है; साथ ही उन्हें ऐसा करना आवश्यक भी था। आज वृन्दावन में जहाँ वैज्ञानिक लट्टू प्रकाश फेंकते हैं वहाँ पहले पेड़ थे, आभीर थे, गायेँ थी, दूध, दही और मक्खन था। अतः उसका चित्रण उनकी कला में स्वयं आ गया है। और आता भी क्यों नहीं क्योंकि कलाकार की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म, पारखी और ग्रहणशील तथा पैनी होती है।

इस प्रकार अन्ततोगत्वा हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सूर-साहित्य में दूध, दही और मक्खन का बड़ा महत्व है जिसकी विशेष चर्चा हम अन्यत्र करेंगे।

ई० १९४४

विद्वान् आलोचकों की दृष्टि में—

‘विचार और अध्ययन’ जैसी पुस्तक की हिन्दी-साहित्य में आवश्यकता है। पोधों से लोम डर जाते हैं, उनके लिये ऐसे गंभीर, तथ्य पूर्ण, रोचक ग्रन्थों की आवश्यकता होगी ही। यह पुस्तक सुन्दर और विचार-पूर्ण है। आशा है, यह आलोचना-पुस्तक हिन्दी में महत्वपूर्ण साबित होगी।

हार्नक्लिफ, हैपी वेली
मसूरी

महापंडित राहुल सांकृत्यायन

श्री सियाराम शरण प्रसाद के आलोचनात्मक लेखों के इस संग्रह को पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई। उनमें आलोचन की प्रतिभा और अभिव्यक्ति का संतुलन दोनों है। लेखक में कृतियों के भीतर पैठकर कलाकार की प्रेरणा को पकड़ने की क्षमता है और साहित्य के विभिन्न अङ्गों की उन्हें पूरी-पूरी जानकारी है। भाषा पर पूर्ण अधिकार है। साहित्य संसार में वे एक उच्च कोटि के आलोचक के रूप में स्वीकृत होंगे।

रावर्टशन कॉलेज
जबलपुर

प्रो० रामेश्वर शुक्ल ‘अंचल’

श्री सियाराम शरण के लेख सुन्दर, समीक्षात्मक और शोध-आत्मक हैं। हिन्दी-साहित्य इनसे लाभान्वित होगा।

नई दिल्ली

महावीर अधिकारी
सम्पादक-समाज

श्री सियाराम शरण, एम० ए, भावुक साहित्यकार और गंभीर समीक्षक हैं। आपकी विचार-धारा सुन्दर, स्वस्थ और संतुलित है। साहित्य के प्रति आपकी स्वस्थ साधना सराहनीय है। उनके महत्वपूर्ण लेखों को हिन्दी-सेवी उचित सम्मान देंगे।

आर्य नगर
कानपुर

रामनाथ गुप्त
सम्पादक-रामराज्य

प्रकाशकीय—

श्री सियाराम शरण प्रसाद, एम० ए० का समीक्षात्मक हिन्दी-निबन्धों का तृतीय संकलन हम पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं— भविष्यगत प्रत्याशा और हर्ष-तरङ्ग के साथ । निबन्धों की वैयक्तिकता (Individuality of essays) में मौलिकता (Originality), मार्मिक सत्यांश का अनुसंधान (explored of piercing truth), विबुद्ध भाषा-शैली (Modified Diction) में सरलता (Simplicity) जो साहित्य में अपेक्षित हैं और गंभीर प्रतिभा (Profound talent) अपने समस्त तत्त्वों के साथ समादृत हैं ।

ये सभी निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा प्रशंसित हैं । हम इनकी कहानी, एकाङ्की, नाटक, उपन्यास आदि का सुदृढ़ संकलन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते रहेंगे—यह दृढ़ आशा है ।

प्रेस की त्रुटियों से यह ग्रन्थ अमुक्त नहीं है, इसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं । कुछ विशेष त्रुटियाँ जैसे 'कृष्ण और राम में अभेद' के स्थल पर 'राधा और राम में अभेद' कर दिशा है (पृष्ठ १७) प्रेस ने । प्रस्तुत पुस्तक के निकलने में श्री हरीश हाजीपुर और श्री कृष्ण मोहन 'मधुकर' का महत्वपूर्ण हाथ है ।

प्रकाशन समिति

‘निर्माण प्रकाशन’

मोतीभील, मुजफ्फरपुर ।

